भूमिका ॥

यह ग्रन्थ एक आख्यायिका द्वारा आत्मा ब्रह्म का बोधक है, स्वामी सेवक, राजा प्रजा, और स्त्री पुरुष के धर्मों का उपदेशक है. यह आर्य पुत्र पुत्रियों के आचरणों को सुधारने वाला और उनको सनातनधर्म के मार्ग पर चलानेवाला है. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और साधुओं को क्या कर्तव्य है इसका यह बतानेवाला है.

जो कोई इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ जायगा वह अवश्य अमियरस को जो इसमें भरा पड़ा है पीकर अमरत्व को पाकर अविनाशी आनन्द के सागर में मग्न पड़ा रहेगा जो जीवन्मुक्ति का यथार्थ स्वरूप शास्त्रों में कहा गया है.

॥ श्री हरिः ॥

ब्रह्मदर्पण ।

शरद ऋतु है, कार्त्तिक का महीना है, शान्ति चारों ओर छारही है, एक महावन के अन्दर एक मैदान है, जिसके मध्य में से पतितपावनी कलिमलनाशिनी नर्मदेश्वरी नदी वह रही है, और उसके दोनों किनारे छोटे छोटे, हरे फूलों से भरे वृक्षों करके सुशोभित हैं, उसके थोड़ी दूरपर एक प्यारा वालक, जिसकी आयु सात वर्ष से अधिक न होगी, और जिसके हरएक अंग से लावण्यता और सुन्दरता टपक रही है, आंख मींजता, देह ऐंठता, और जमुहाई लेता हुआ, प्रातःकाल होते ही उठकर खड़ा होगया.

उसके मुख की प्रभा और सूर्यदेव के निकलने में विलम्ब और दिनों की अपेक्षा, सूचित करती है कि आज हमारे देव, वालक के मुख के तेजोमय प्रकाश से लज्जित हो रहे हैं, और अपने मित्र इन्द्रदेव से प्रार्थना इस बात की करते हैं कि आज कुछ काल के लिये अपने और वालक के मध्य में मेघों की अन्तरा पड़जाय, और ऐसाही हो भी गया. पर यह थोड़ी ही

देर रहा, परमात्मा की आज्ञा, जो उनको अहर्निश चलने की है, उसके उल्लंघन करने में असमर्थ होकर अपनी इच्छा विरुद्ध उनको निकलनाही पड़ा, और वे मेघ सूर्य की किरणों के पड़ने से एक विचित्र दृश्य वन गये, जिनको देखकर वह प्रिय वालक, जिसका लाड़ प्यार अभी तक घर के अन्दरही होता रहा था, वड़े आश्चर्य को प्राप्त होकर अपने से कहता है, क्या यह मेरे सामने असंख्य वहुरंग अमूल्य मणियों की प्रभा हैं, क्या यह दीप-मालिकाओंका प्रकाश दूरस्थित नीले, पीले, हरेभरे वृक्षों पर होरहा है, थोड़ी देर पीछे वायु के वेग करके, अभ्र के नाश होने पर शुद्ध निर्मल आकाश में सूर्यदेव को प्रकाश करते जाते देखकर आश्चर्य के साथ कहता है कि "यह कौन सुवर्ण कलश के आकारमें निरालम्ब होता हुआ गगनमंडल में चला जारहा है ?" क्या यह कोई देव है, और उसके ऊपर नील वर्ण तम्बू को विना किसी लकड़ी के सहारे के किसने, किस निमित्त, खड़ा कर दिया है, उसका विस्तार कहां तक है, और वह क्यों नहीं गिरता है, पृथ्वी की तरफ़ दृष्टि डालते ही कहने लगा कि इस परिमाण रहित बहुरंगी विछौने को जिस पर हरे, पीले, नीले, काले, श्वेत, लाल, गुलावी, वैंजनी, कत्थई, फ़ालसई,

कलेई, तुरजी, सूर्यमुखी, चन्द्रमुखी, चित्र विचित्र के पुष्प, बेल बूटे की सूरत में जड़े हैं, किसने, किस निमित्त बिछाया है, और इसका आधार क्या है, इस नाट्य-शाला में कौन राजा बनकर बैठेगा, और कौन नटिनी नृत्य करेगी, और कौन कौन इसके द्रष्टा होंगे, ऐसा विचारता हुआ खेल खाल के अनन्तर राजकुमार अपने भानु नौकर के पास आया, और खा पीकर सो रहा. जब आठ नौ बजे रात्रि को जगा तो ऊपर दृष्टि डालते ही तारागणों को देखकर चकित होगया. हँसने लगा, और कूद कूद कर कहता है, आहा, क्या प्रकाश करती हुई लालटेनें लटक रही हैं, कैसी ये जगमग, जगमग कर रही हैं, इतनी दूर पर जाकर किसने इनको जलाया है, और कहां से वह तेल बत्ती लाया है, फिर देवयान मार्ग को देखकर विस्मित होता हुआ कहता है. क्या ये श्वेत रंग की गौवें तो नहीं चर रही हैं, क्या रानियों के गले के हार टूट कर उनके मुक्ताफल छितराबितर तो नहीं होगये हैं, क्या किसी भरभूजे ने मक्की और बजरी के लावे को ऊपर तो नहीं फेंक दिया है ? और वे अनाश्रित आकाश में बिखर कर स्थित होगये हैं. राजकुमार को लालच ने सताया. उसने ऊपर को हाथ फैलाया, अपनी माता को याद किया और

"अम्मा अम्मा" कहने लगा पर अम्मा कहां है जो आजावे, और मांगी हुई वस्तु को दे देवे. राजकुमार समझता था कि मेरी अम्मा कहीं बैठी है, वह मेरी आवाज़ को सुनकर दौड़ आवेगी. और ऊपर स्थित लालटेनों को लाकर मुझको देवेगी. फिर ज़ोर से चिल्लाया, पर किसी ने न सुना, उसकी वेकली की दशा को देखकर उसके भक्त सेवक भानु का नेत्र डबडबा आया, पर अश्रुप्रवाह को रोक कर बालक को छाती से लगाकर, यह सोचता हुआ, कि यदि इस बालक को अपने माता, पिता और राज्य का पूरा पूरा हाल मालूम होजायगा तो शोक उसके ऊपर अभी से ही आक्रमण करके उसको दीन दुःखी बना देगा, कहने लगा कि हे प्रिय राजकुमार ! तुम्हारे माता पिता ने तुम्हारे सुख के निमित्त तुमको मेरे साथ इस अपूर्व सुख-सदन विस्मययुक्त वन में भेजा है, जब तक तुम्हारी इच्छा हो रहो, खेल कूदकर आनन्द करो, यह दास तुम्हारे साथ सदा बना रहेगा, अपने धर्म सेवकाई से कभी च्युत न होगा. यह सुनकर राजकुमार का चेहरा आनन्द से कमलवत् खिल उठा और वह कहने लगा, हे भानु दादा ! मेरे माता पिता की मेरे ऊपर अति कृपा है, जो उन्होंने मुझे ऐसे सुहावने देश में भेजा है,

यह बातचीत हो रही थी कि इतने में शृगाल बोल उठे, मालूम होगया कि जंगली चौकीदार अपना काम करने लगे, और एक पहर रात्रि व्यतीत हो गई. अब विश्राम करना उचित है, भानु ने राजकुमार को झट-पट खिलापिला बिस्तर पर लिटा आप तीर कमान चढ़ा, उसके इर्द गिर्द घूमने लगा, और रात भर जागता रहा, प्रभात होते ही राजकुमार उठा, शौचादि कर्म करके इधर उधर घूमने फिरने लगा, क्या देखता है, कि एक कुंज में मोरों के झुंड प्रेम में मस्त होकर, सुनहले पंख गगनछत्रवत् सूर्य की प्रतिभा से प्रतिबिम्बित उठाये हुए अपने अपने प्रेमपात्रों के सामने साहंकार नृत्य कर उनको रिझा रहे हैं, यह दृश्य उस को अति प्यारा लगा, नेत्र की टकटकी उधर बँध गई, और वह अपने प्यारे सेवक भानु से कहने लगा कि हे दादा! ऐसा सुन्दर नाच मैंने राजमहल में कभी नहीं देखा था.

भानुने उत्तर दिया हे राजकुमार! ये पक्षी स्वेच्छासे यहां नाचते हैं, और राजमहल में मनुष्य परइच्छासे नाचते हैं, स्वेच्छा और परइच्छा में बड़ा भेद है, एक हृदय को खिला देता है, और दूसरा हृदय को कुंचित कर देता है, यह कहकर भानु खाने पकाने में लगगया.

थोड़ी देर में हलके धौरे बादल पश्चिम दिशा की तरफ़ दिखाई दिये, उसमें इन्द्रधनुष दृष्टिगोचर हुआ, उसको देखकर राजकुमार फिर आश्चर्य में भरगया, हर्ष के मारे फूल उठा. भानु के पास जाकर और अंगुली ऊपर की ओर उठाकर कहने लगा, हे भानु दादा! यह क्या है? उसने उत्तर दिया यह सतरंगी इन्द्रदेव का धनुष है, यह सुनकर और भी विस्मित हुआ, और सोचने लगा कि जिस पुरुषका चाप पृथ्वी के एक छोर से दूसरी छोर को चला गया है, तो उसका बल और पराक्रम कितना बड़ा होगा जो इस अतुल्य सुन्दर धनुष को धारण करता होगा, हे दादा! क्या इन्द्रदेव मेरे पिता से ऐश्वर्य और बलमें बढ़कर है, मैंने अपने घरमें ऐसे अद्भुत विस्तृत धनुष को नहीं देखा था, नौकर ने उत्तर दिया हे पुत्र! यह केवल देखनेमात्र है, वास्तव में यह कुछ नहीं है. सूर्यदेव का प्रतिबिम्ब जब पतले अभ्र पर पड़ता है तब एक सतरंगी धनुषाकार आकार उसके सन्मुख दिखाई देने लगता है, यह बातचीत हो रही थी कि इतने में अँधियारी छागई, चारों तरफ़ काली काली घटायें उठ आईं, उसमें बिजली चमकने लगी, बादल गरजने लगा, हवा सनसन चलने लगी, छोटी छोटी चिड़ियां पेड़ों पर चहचहाने लगीं, बड़ी

घड़ी काले मेघों तक पहुँच गईं और उनमें बिचरने लगीं, कभी कभी ऐसी मालूम होती थीं कि मानों उन्हीं में चिपट गई हैं. यह एक अद्भुत दृश्य दिखाई देने लगा. राजकुमार अपने भानुसे पूछता है "क्या दादा ऊपर तोपैं चलती हैं ?" वहां तोपैं कैसे पहुँच गईं, और उनको कौन छोड़ता है, क्या किसी राजा के आगमन में ये सलामियां होरही हैं, थोड़ी देर में यह दृश्य बदल गया, वर्षा होने लगी, सुनसान छागई, पखेरू पेड़ों पर चुपचाप हो गये. राजकुमार एक गुफा के द्वार पर खड़ा होकर वृष्टि को देख कर आनन्द के मारे उछलने लगा, खिलखिला उठा, एक पहर बाद बादल का पता न लगा, आकाश साफ़ होगया, सूर्य निकल आया, पहिले का जमघट कहां से आया और कहां गया. कहीं पता न लगा, राजकुमार अपने आज्ञाकारी नौकर से पूछता है, हे दादा ! यह क्या था ? यह क्या था ? और जो उत्तर मिलता है उससे उसको परितोष हो जाता है.

एक दिन नर्मदेश्वरी देवी के तटपर राजकुमार खड़ा हुआ क्या देखता है कि बड़े वेग के साथ बहते हुए जल में अनेक छोटे बड़े जीव जन्तु आनन्द के साथ रमण कर रहे हैं, उसके मनमें तर्कना उठी कि इन

जलचर जीवों की तरह थलचर जीव क्यों नहीं जल में क्रीड़ा करते हैं, इनमें उनमें क्या भेद है, इन सबका बनानेवाला कौन है, ऐसा सोचते हुए आगे को बढ़ा और देखा कि झुंड के झुंड धीवर मछलियां मार रहे हैं और हजारों मीन नीर से बाहर तड़फ रही हैं. एक की निर्दयता और दूसरे की दीनता ने राजकुमार की क्रोधाग्निको भड़का दिया, नेत्र उसके लाल होगये, और वह कहने लगा " अरे दुष्ट, क्रूर, निर्दई ! इन बिचारी निरपराधिनी मछलियों के तुम सब क्यों प्राणघातक होरहे हो ?" मैं तुम सबको अभी यथोचित दंड दूंगा, यह कहकर उसने धनुष बाण संधान किया, सबों ने कम्पायमान होते हुए जल से बाहर निकल कर सूखे दंड की तरह पृथ्वी पर गिर कर राजकुमार को नमस्कार किया, और उसकी आज्ञानुसार सब जीती, तड़फती मछलियों को पानी के अन्दर छोड़ दिया. वे पानी को पातेही आनन्दित होती हुई, और हर्ष के शब्द करती हुई, इधर उधर पूंछ हिलाती हुई विचरने लगीं जो सूचित करता था कि वे दीन दुःखी अपने प्राणरक्षक के लिये ईश्वर से आशीर्वाद मांग रही हैं. इस वृत्तिने कि मैं इतने दुःखी जीवों के प्राणों का रक्षक बना राजकुमार के हृदयकमल को खिला दिया, और

उसकी प्रभा उसके सूर्यमुख पर भासने लगी, वह तन हर्षित और मन प्रफुल्लित होता हुआ इधर उधर फिरने लगा, शुभ कर्म का फल ऐसा ही होता है, शंका उत्पन्न होती है कि एक छोटे बालक के वशीभूत सहस्रों क्रूर धीवर क्यों अपने जीविका कर्म को त्याग कर अवाच्य होकर उसके सामने खड़े होगये, उत्तर यही मिलता है कि राजकुमार के पूर्व जन्मों के अनेक शुभ कर्म फल देने को उद्यत हो आये, और उनके तेज बलने उसके ललाट से प्रकाश की धार में निकल कर धीवरों के अन्तःकरण में प्रवेश करके उनको विह्वल करदिया, और वे बिचारे हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे हमारे छोटे महाप्रतापी स्वामी! आपकी अनुपम छवि और तेज ने हम सबको अपने वश में करलिया है, आप कृपा करके बतावें कि अब हमको जीविकार्थ क्या कर्तव्य है, राजकुमार उनको क्रूरता से रहित, और नम्रता से युक्त पाकर हँस पड़ा, उसकी उस अवस्था को देख करके सबका हृदय आनन्द से भर गया, फिर उत्तर दिया, कि हे धीवरो! अपने जीव को जीवित रखने के लिये और जीवों का प्राण-घातक होना बड़ा पातक हैं, तुम सब जाओ अपने जीवन का निर्वाह दूसरे उपाय करके करो, वे सब उस

राजकुमार को अपना हितकारी समझ कर अपने दूषित कर्म को त्याग कर कृषि आदिक कर्म करने लगे, जब राजकुमार ने अपने विश्वासनीय भृत्य भानू के पास आकर सारा वृत्तान्त सुनाया, उसका शरीर आनन्द से गद्गद होगया, और मन में विचार करने लगा कि मेरा राजकुमार ईश्वर की कृपा से जब बड़ा होगा और राजगद्दी पर विराजमान होगा तो सब जीवों पर दया करेगा, किसी को दुःख न देगा.

अब राजकुमार प्रतिदिन बेखटके अकेले जंगल में इधर उधर घूमता, बहुरंगी जीवों को देखकर खुश होता और वे भी इसकी छवि को देखकर प्रसन्न होते, और उसके पास आकर अनेक कौतुक करते, हे प्रिय पाठको ! बचपन की सरलता, और निष्कपटता जीवों को प्रेम में बांध देती है, बड़ों की दया और शुभचिन्तकता छोटों को अपने अधीन करलेती है, बली की दयालुता दुर्बलों को अपने पीछे लगा लेती है, और जो चाहती है वही उनसे करा लेती है, प्रकृति की प्रतिदिन की भिन्नता मनुष्य के आनन्द का कारण बनती है, और उसी में कुछ काल तक की समता मन की खिन्नता का हेतु होने लगती है, अपूर्व पदार्थ की अपूर्वता भी कुछ काल पीछे नीरस होकर फीकी लगने

लगती है, और मन उससे उकताकर दूसरे दृश्य के देखने की अभिलाषा करने लगता है.

राजकुमार का मन अरण्य में बहुत काल तक रहते रहते हट गया, जो वस्तु पहिले उसको प्रिय लगती थी वही अब अप्रिय दिखलाई देती है, जो जंगल पहिले मंगलरूप था अब वही असंगल दीखता है, राजकुमार के हृदय में माता पिता का ख़्याल जम गया, सोच ने उसको आन घेरा, वह "अम्मा" "बापू" "अम्मा" "बापू" कहकर रोने लगा, उसको रोता देखकर भानू भी रोने लगा, दोनों खूब रोये, हृदय जो वियोग के शोक से भारी हो गया था, अब हलका होगया, रुदन भी एक अपूर्व औषध है, यह दुःख रोग की निवृत्ति में अमृत की तासीर रखता है, माता पिता के वियोग ने राजकुमार को रुलाया, और शुभचिन्तक मालिक के क्लेश के ख़्याल ने विश्वस्त भृत्य के विदीर्ण हृदय को दुःख से उद्वेगित किया, काल समदर्शी है, यह सुख दुःख दोनों को भक्षण करके जीवको शान्ति कर देता है.

राजकुमार चुपचाप नदी की तरफ़ चला गया, और भानू भोजन की सामग्री के एकत्र करने में लगगया, चार बजने का समय है; नदी का जल धीरे धीरे बह रहा है, उसके किनारे के वृक्ष फूल रहे हैं, चारों तरफ़

हरा भरा हो रहा है, सूर्य की किरणों में नम्रता आगई है, ऊपर की पहाड़ी सुवर्णमयी हो रही है, जीव जन्तु अपने में मग्न हैं, विरोधी अविरोधी बन गये हैं, ऐसा प्रिय दृश्य होने पर भी राजकुमार का हृदय प्रफुल्लित नहीं है, माता पिता का ध्यान जमा है, बार बार उन्हीं का स्मरण होता है, एकाएक एक स्त्री और एक पुरुष दिव्यरूप श्वेतवस्त्र धारण किये हुए आनन्द में बालक की तरफ़ चले आ रहे हैं; उनको देख-कर राजकुमार "अम्मा" "बापू" "अम्मा" "बापू" कहता हुआ उनकी तरफ़ दौड़पड़ा (माता पिता संसार में बालक के लिये प्रेम के अथाह सागर होते हैं) और उनके पास पहुँच गया, स्त्री माता का नाम सुनतेही झट से बालक को उठाकर चूमने लगी, और पुरुष पिता का नाम सुनकर उसके तरफ़ स्नेह की दृष्टि से देखने लगा, यह माया माता है, और माया पति पिता है, उन दोनों ने राजकुमार के शिरपर हाथ फेरा, और वह शुद्ध बुद्धि का सदन बनगया, उसको सब हस्तामलकवत् दिखाई देनेलगा, माया माता कहने लगी, हे पुत्र ! मेरे सब कार्य आश्चर्यरूप हैं, और स्वयं भी मैं आश्चर्यमय हूं:

जब तुम्हारे पिता, जो तुम्हारे सामने खड़ेहैं, इच्छा

करते हैं कि मैं एकसे अनेक होकर विचरूं, इस उनकी सुक्ष्म वृत्ति को जानतेही, मैं सत् असत् से विलक्षण रूप धारण कर प्रकट हो आती हूं, और क्रमशः अनेक शरीरों को धारण कर तुम्हारे पिता को उनमें निवास-स्थान देकर एकसे अनेक बना देती हूं, और वह फिर मेरे साथ विचरने लगते हैं, हे पुत्र! जो कुछ तू देखता है वह सब मेरीही रची हुई है, और तेरे समीपवर्ती जो तेरे पिता स्थित हैं, उनकी चैतन्यता करके सब सचेतन होरही है; हे पुत्र! तू इसी जगह अपने माता पिता की अद्भुत शक्ति को देख, एक पलके लिये आंख बन्दकर, और फिर खोलदे. उसने वैसाही किया, हजारों शरीर सुन्दर से सुन्दर पृथ्वीपर मृत्तिका के खिलौने की तरह पड़े देखा, चेहरा मोहरा सब बना है, पर कोई इन्द्रिय काम नहीं देती हैं, न वे चलते हैं, न फिरते हैं, न बोलते हैं, न खाते हैं, न पीते हैं, पाषाण-वत् पड़े हैं; माता ने कहा हे पुत्र! अब अपने पिता की शक्ति को इन्हीं में देख, माता के कहने से पिता की नासिका में से एक श्वास निकलकर प्राण वायु की सूरत में उन सब शरीरों में प्रवेश करके उनको अचेत से सचेत दमभर में बना दिया, वे सब उठ खड़े हो गये, और अपने माता पिता को प्रणाम कर विचरने

लगे, थोड़ीदेर पीछे पिताने अपनी श्वास को खींच लिया; सबके सब दमभर में धरणी पर बेदम होकर गिरपड़े, और पूर्ववत् अचेत होगये, जो पहिले प्रिय लगते थे वही अब अप्रिय भासते हैं, जहां पहिले चैतन्यता थी वहां अब जड़ता छागई, राजकुमार माया माता से पूछता है कि हे माता ! यह तमाशा आप और पिता का मुझको अतिप्रिय लगता है, आप कृपा करके बतावैं कि इसका विस्तार कहांतक है, माता कहती है:-हे पुत्र ! यह सारा जगत् ऐसाही होरहा है, ब्रह्माण्ड के ऊपर ब्रह्माण्ड है, और सबमें यही जड़ चेतन व्याप्त है, फिर जब पिता ने हाथ ऊपर को उठाया सब स्थावर जंगम दृश्यमान सृष्टि अपनी वर्तमान दशा में ऊपर उड़ चली, और जब नीचे को हाथ गिराया तब वह नभसृष्टि यानी सूर्य, चन्द्र, तारागण, देव, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, हर हराते हुए नीचे को चले, और जब कहा "तिष्ठ" तब अन्तरिक्ष बिषे स्थित होगये, यानी पृथ्वी और आकाश के मध्य में लटक रहे, और सारा संसारी व्यवहार वहीं पर होने लगा, पहाड़ भयंकर रूप धारण किये खड़े हैं, नदियां मंद मंद बहरही हैं, समुद्र घर घरा रहा है, सूर्य हा हा हूत करता हुआ,

पूर्व से पश्चिम को चला जा रहा है, राजकुमार ने आकाश की ओर देखा तो वहां सबको ज्योंका त्यों पाया, पृथ्वी की तरफ़ देखा वहां भी वैसाही पाया, यह कौतुक देखकर राजकुमार अवाच्य विस्मित होकर जहां था वहीं खड़ा रहा, माया माता ने देखा कि बालक घबड़ा गया है, उससे कहा हे पुत्र ! यह तुम्हारे आनन्द के लिये दिखलाया गया है, खेद के लिये नहीं, इतने में पिताने हाथ घुमाया सब सृष्टि अगोचर होगई, कहां गई, पता न लगा. हे पुत्र ! अब तू समझ सकता है कि जो कुछ तू आश्चर्यसे भरा हुआ देखताहै, उसका कर्ता मैंही हूं और उसका पालन करनेवाला यह (पतिकी तरफ़ अंगुली उठाकर) तेरा पिता है. हे पुत्र ! तूने हम दोनों की शक्ति को पृथक् पृथक् देख लिया है, बालक ने उत्तर दिया, हे अम्मा ! ऐसा तमाशा मैं नहीं देखना चाहता हूं, यह तो बड़ा भयानक प्रतीत होता है, ऐसी दयालुता तू अपने पास रख, जो मुझको प्रिय लगे, वह दिखा, इसके उत्तर में माया माता कहती है कि हे पुत्र ! तुझको अब ऐसेही दिखाती हूं, आंख को एक पल के लिये बन्दकर, और फिर खोलदे, उसने वैसाही किया फिर क्या देखता है, कि एक विस्तृत बाग़ कोसों तक चलागया है, फल फूलों से भरा है, सहस्रों सुन्दर

प्यारे बालक बालिकायें, लाखों किशोर स्त्री पुरुष श्वेत वस्त्र ऊपरसे नीचेतक पहिने हुये, और करकमल में जपापुष्प ग्रहण किये हुए, विशाल नेत्रों से देखते हुए, और मुखविम्ब से बात चीत करते हुए, हंस की चाल में इधर उधर घूम फिर रहे हैं, यह दृश्य राजकुमार को बड़ा प्रिय लगा और हँसकर अपनी माता से कहता है, कि हे अम्मा ! तू मुझको ऐसाही तमाशा दिखाया कर, यह मुझको वड़े हर्ष को प्राप्त करता है, पर बता तो कि एक पल में यह सुहावनी दृश्य कहांसे आगई, इसके जवाब में माया माता कहती है कि हे पुत्र ! तू और ये सब और जो कुछ दृश्यमान है या अदृश्यमान है सब मेरे और तेरे पिता में सूक्ष्मरूप से सदा स्थित रहते हैं जैसे स्वप्न की सृष्टि, और जब हम दोनों चाहते हैं तब ये सब भास आते हैं; इसलिये हम सब एकही हैं, चलो, हम तीनों नदी के स्वच्छ जल में एक दूसरे की मूर्ति को देखैं, और ऐसाही किया भी गया, राजकुमारने पहिले अपना और अपने माया माता का चेहरा जल में देखा, दोनों को एक सा पाया, फिर अपना और अपने पिता का देखा, उन दोनों को भी एकसा पाया, वड़ा खुश हुआ ऐसा विचार करके कि जो मैं हूं वही मेरे माता पिता हैं, और जो वे हैं सोई मैं हूं,

जैसे उनकी सुन्दरता अनुपमेय हैं वैसेही मेरी भी.

जबमाया माता ने देखा कि अब राजकुमार की बुद्धि समझने योग्य होगई है, कहने लगी, कि हे पुत्र! तू सावधान होकर सुन, मैं इस दृश्यमान सृष्टि को आदि से अन्त तक दिखाकर बताती हूं, उसको देखकर उस की सत्यता को तू समझ जायगा, और फिर कभी खेद को न प्राप्त होगा, माया माता ने, एक कचनार वृक्ष के एक बीज को हाथ में लेकर, और राजकुमार को दिखाकर, पृथ्वी में डालदिया, वहीं उसमें से एक अंकुर निकल आया, और उसके दोनों दल या फल उस अंकुर के दहिने बायें लगे दिखाई देते रहे, हे पुत्र! देख अभी इन दोनों दलों को निकालकर मिलादेवें तो बीज, ज्यों का त्यों, अपनी पहिली सूरत में हो जायगा, देख जो अंकुर मौजूद है, उसी में से एक अति पतली डण्डी भी निकली चली आरही है, थोड़ी देर पीछे वह डण्डी बढ़गई, और दो पत्ती भी उसमें लगी हुई दिखाई दीं, फिर थोड़ी देर में वही बड़ा वृक्ष होगया, और सहस्रों छोटी बड़ी शाखायें, पत्ते, फल, फूल उसी में दिखाई देने लगे, और सारा वृक्ष अति सुहावना दृष्टिगोचर होने लगा, अब माया माता कहती है, कि हे पुत्र! जो तेरे सामने हरा भरा आनन्द का

देनेवाला वृक्ष फूलों से लदा हुआ दिखाई देता है, यह इतना बड़ा दृश्यमान वृक्ष उसी अदृश्यमान शक्ति वीर्य में सूक्ष्म निराकार रूप से स्थित था, वही पृथ्वीरूपी माता और जलरूपी पिता के संयोग से और अग्नि की प्रेरणा से प्रेरित हुआ इस विशाल वृक्ष होने का कारण बना, और अपने वीर्यवत् लक्षशः वीर्य देने को उद्यत है, हे पुत्र ! इस शक्ति से उत्पन्न हुए वीर्य के विस्तार के गिनने और जानने को देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नरादि सब के सब असमर्थ हैं, यदि मेरी और तुम्हारे पिताकी इच्छा हो तो केवल एक वीर्यसे उत्पन्न होकर असंख्य वृक्ष ब्रह्माण्ड को आच्छादित कर सकते हैं, और उनके हाल को करोड़ों वर्ष तक अहर्निश ब्रह्मा भी लिखना चाहें तो नहीं लिख सकते हैं, मनुष्य की कौन गिनती है, फिर अण्डजयोनि और जरायुजयोनि के जीवों को दिखा कर बताया कि किस तरह असंख्य जीव पलक मारते मारते, अण्ड और पिण्ड से कीड़े, मकोड़े, पतिंगे, मक्खी, मच्छड़, पशु, पक्षी, मनुष्यादि उत्पन्न होते हैं. हे पुत्र ! मुझ से उत्पन्न हुए इस ब्रह्माण्ड में, जिसको तू अपने सामने देखता है, क्या क्या भरा है कोई जानने को आज तक समर्थ नहीं हुआ है, और न होगा फिर हँस

कर माया माता कहती है, कि हे पुत्र ! तेरी माता मुझ में और तेरे पिता में जो तेरे सामने खड़े हैं चित्तविनोदार्थ ऐसी लाग डांट अनादि कालसे पड़ी चली आती है, कि न मैं भोग्यवस्तु के बनाने से हटती हूं, और न वह उनके भोगने से हटते हैं, जब मैं जलरूप धारण करके ऊपर, नीचे, बायें, दहिने, चारों तरफ़ सिंचन कर देती हूं तब वह शीघ्र पवन बनकर उस तरी को सोख लेते हैं, जब मैं चन्द्रमा होकर सब वनस्पतियों में रस पैदा करती हूं तब वह उसी क्षण सूर्य होकर उस रसको पान कर जाते हैं, और जब मैं पृथ्वी बनकर बहु प्रकार के अन्न, फल, फूल को रचती हूं, तब वह पुरुष होकर उनको भक्षण करजाते हैं. हम दोनों आपस में एक दूसरे के बल को दबाना चाहते हैं पर कोई जीत नहीं पाता है. हे पुत्र ! बता तू किस तरफ़ है, उसने सोच समझकर उत्तर दिया हम दोनोंके भक्त हैं, जैसे मुझको पिता प्यारा है, वैसेही मुझको माता प्यारी है, दोनों का ऋण मेरे ऊपर बराबर है, माता पिता यथार्थ उत्तर पाकर बड़े प्रसन्न हुए, और हँसने लगे, पिताने उस राजकुमार को उठा लिया और लाड़ प्यार किया, और कहा, हे पुत्र ! तू सच कहता है, फिर माया माता राजकुमार से कहती है, कि हे प्यारे पुत्र ! तू अपने शरीर

की तरफ़ देख, इसमें दो भाग हैं, एक आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच कर्मेन्द्रिय हस्त, पाद, गुदा, लिङ्ग, वाणी, पांच ज्ञानेन्द्रिय नेत्र, श्रोत्र, जिव्हा, नासिका और त्वचा, और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हैं, और दूसरा इनके अन्दर चैतन्य है, जिस करके पहिलेवाले सचेत हो रहे हैं यानी चलते फिरते खाते पीते हैं, और सारा व्यवहार दुनियां का करते हैं, यदि दूसरा भाग पृथक् होजावे तो पहिला भाग व्यवहार के करने में असमर्थ होजावे, और उसकी जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था का कहीं पता न लगे, देख तेरे आगे एक मृतक शरीर एक पुरुष का पड़ा है, न वह बुलाने से बोलता है; न डरवाने से डरता है, न नेत्र से देखता है, न नासिका से सूंघता है, न श्रोत्र से सुनता है, और यदि पहिला भाग न रहै, तो दूसरा भाग चैतन्य भोगने में असमर्थ है, इसलिये कर्तृस्वार्थ और भोगार्थ दोनों की आवश्यकता है. हे पुत्र! तुझको मालूम होचुका है कि सबकी उत्पत्ति हम दोनों से है, तब तू बता सकता है कि जितने प्राणी तू देखता है वे तेरे से क्या सम्बन्ध रखते हैं, उसने उत्तर दिया कि जितने स्त्रीवाचक हैं वे सब मेरी भगिनी हैं, और जितने पुरुषवाचक हैं वे सब मेरे भ्राता हैं, क्योंकि उन

का और मेरा माता पिता तुम दोनों एक ही हो, उनका दुःख मेरे दुःख के ऐसा और उनका सुख मेरे सुख के ऐसा होता होगा. ऐसा मुझको अनुभव होता है, इसलिये मैं उनको सदा प्यार करूंगा, और प्रसन्न रक्खूंगा, और कभी दुःख न दूंगा, इस उत्तर को सुनकर वे दोनों बड़े हर्ष को प्राप्त हुए.

माया माता फिर कहती है हे चन्द्रमुख ! सामने के पहाड़ को देख, कैसे उससे बादल मिले हुए सुहावने दीखते हैं, कैसे उसमें तडित् चमक चमककर तिरोधान होजाती है, और कैसे सब पक्षी आनन्दके साथ उसी तरफ़ उड़ते चले जारहे हैं, कोई उनमें श्वेत रंग के हैं, और कोई लाल रंग के हैं, कैसे वे बादलों से चिपक गये हैं, देखो कैसे बादल घमण्ड के साथ आगे को बढ़े आते हैं, और कैसी ठण्ढी हवा उसी तरफ़ से चली आती है, और हम तीनों के शरीरों को स्पर्श करके सुख दे रही है. हे पुत्र ! पृथ्वी की तरफ़ देख, कैसी हरी मख़मली वस्त्र से ढकीहुई है, कैसे उस हरे मख़मल पर श्वेत, श्याम, रतनार, नीले, पीले, गुलाबी, चम्पई, बैजनी आदिक रंगों के फूल, बेल बूटे की सूरत में जड़े सुहावने दिखाई देते हैं, इन सब का कर्ता मैंही हूं, हे सौम्य ! थोड़े दिन तुम यहां और रहकर जंगल में मंगल

करो, और जीवन का आनन्द घूम फिरकर उठावो, अब हम दोनों यहां से जायेंगे, फिर मिलेंगे, थोड़ी दूर पर एक परमहंस रहता है, वह हम दोनोंका बड़ा भक्त है, वह तुझको विद्या से सम्पन्न करेगा, और तुम्हारा कल्याण होगा, यह कहकर दोनों तिरोधान होगये, वह बालक आनन्द में भरा हुआ अपने विश्वास-पात्र सेवक के पास दौड़ता हुआ आया, और अपने माता पिता के मिलने का हाल सुनाया, वह सुनकर बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ, और ज्यों ज्यों उसकी अपूर्व मनग्राही बातों को सुनता त्यों त्यों उसको खेद होता, और यह वृत्ति कि मेरे राजकुमार के शरीर में कोई वनका यक्ष प्रवेश कर गया है दृढ़ होती जाती थी जब और दिन की अपेक्षा वह अद्भुत बातचीत करता जो उसकी समझ के बाहर था, भानू मनही मन में पछताता और सोचा करता कि किस गुणी के पास जाऊं और बालक को दिखाऊं, राजकुमार कहता है हे भानू दादा ! तू क्यों घबड़ाता है, सचमुच मेरे माता पिता आये थे, और मुझको देखकर बड़े प्रसन्न हुए, बहुतेरे तमाशे दिखाकर, और यह कहकर कि थोड़ी दूर पर एक परमहंस रहता है जब तू उसके पास जायगा और रहेगा तब वह तुझको विद्या सम्प्रदान करेगा

जिससे तेरा बड़ा कल्याण होगा, चले गये. साधु का नाम सुनकर भानू का संशय कुछ कुछ दूर हुआ पर तौभी कभी कभी उसको ख़्याल होआता कि क्या राजा रानी मार डाले गये, और उनका जीवात्मा मरते समय अपने प्रिय पुत्रको याद किया हो, और स्मरणशक्ति के बल करके माता पिता की सूरत को ग्रहणकर अपने पुत्र से आनकर मिले हों, और उसको कुछ कौतुक जीवित दशा में किये हुए को दिखाकर तिरोभाव को प्राप्त होगये हों. यदि वे इस नाशी पथिकाश्रम को त्याग कर अविनाशी स्वर्गवासी होगये हैं तो इस दास की दासत्व में अब रहने की आवश्यकता ही क्या है, पर उनके दिये हुए मणि को किस मणिकार को दूं, और अपने स्थूल शरीर को जीर्ण वस्त्रवत् फेंककर सूक्ष्म शरीर से अपने राजा रानी के चरणकमल की सेवा स्वर्ग में जाकर करूं; यह विचार कर रहा था कि इतने में उसके कान में भनक पड़ी कि अशुभचिन्तक वृत्ति को त्यागकर परमहंस के पास चल, वह उठकर खड़ा होगया, भोजन सामग्री एकत्र कर खाना तैयार किया, और राजकुमार को खिला पिलाकर सुला दिया. और आप भी खा पीकर तीर कमान हाथ में लेकर पहरा देने लगा. भोर हुआ, राजकुमार को अपनी पीठ पर

लेकर भानू आगे चला क़रीब दश बजे के एक कुटी के पास एक साधु को घूमते फिरते देखा, राजकुमारको उसके चरणों में डाल दिया, वह बालक के चेहरे को देखते ही समझ गया कि किस निमित्त और किसका भेजा हुआ यह बालक मेरे पास आया है, बड़े हर्ष के साथ कहा, हे पुत्र ! तू मेरे पास ठहर, मैं तुमको विद्या का दान दूंगा, और तेरे माता पिता की आज्ञा को पालन करूंगा, तत्पश्चात् एक उत्तम स्थान राजकुमार के रहने के लिये दिया और बड़े आदर सत्कार के साथ उसका आतिथ्य पूजन किया, और शुभ दिन शुभ लग्न में राजकुमार को विद्या आरंभ करायी और उसकी बुद्धि की तीव्रता को देख करके ऋषि महाराज बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुए, जितना एक बार लड़का पढ़ता है सब कंठाग्र हो जाता है, इस कारण गुरु महाराज बड़े अनुराग के साथ विद्या का प्रदान करते हैं, हे पाठकजनो ! गुरु शिष्य का सम्बन्ध संसार में पिता पुत्र से बढ़कर होता है, पिता जो कुछ पुत्र के साथ करता है वह अपने सुख निमित्त करता है, गुरु जो कुछ करता है वह शिष्य के कल्याणार्थ करता है, इसलिये एक स्वार्थी और दूसरा परार्थी है. एक पुत्र को दुनियां के प्रबल पाश से बांधता है, दूसरा शिष्य को उससे छुड़ाता है, और यही कारण

है कि कुशल शिष्य गुरु को, उसके प्रिय पुत्र से भी, अधिक प्यारा होता है, अर्जुन अपने गुरु महाराज को कितना प्यारा था और जो अस्त्र शस्त्रविद्या उसको द्रोणाचार्य महाराज ने दी थी वह अपने पुत्र अश्वत्थामा कोभी नहीं वताई थी, इसका कारण यह है कि पुत्र अपने पिताकी उपकारिता को स्वार्थदोष से दूषित पाकर उस प्रेम और प्रसन्न चित्त से पिता की सेवा और आज्ञा पालन नहीं करता है जैसा शिष्य गुरु के शुद्ध विमल उपकार को पाकर उसका सेवा सत्कार अपनी सच्ची प्रेम से सनीहुई भक्ति करके करता है, राजकुमार स्वामी जी को अति प्यारा है, पांच वर्ष के अन्दर ही सव प्रकार की विद्याओं के आभूषण से आभूषित हो गया, उसमें क्षत्रियत्वधर्म जगउठा, इधर उधर शिकार करने लगा, वाण और कृपाण के चलाने में अद्वितीय हुआ. एक दिन कुटी के बाहर चार कोस निकल गया, एक सिंह को सोते देखकर ललकारा, वह जगउठा, क्रोध से भरा हुआ आगे आया, राजकुमार पर आक्रमण किया, उस पर राजकुमार ने तलवार का प्रहार किया, पर वार खाली गया, नाहर राजकुमार के ऊपर छलांग मारने को था ही कि इतने में एक तीर राजकुमार के पीछे से सनसनाता हुआ आया, और सिंह की

छाती में प्रवेश कर गया, वह चित्त गिरा, प्राण भाग निकला, मृतक शरीर सामने पड़ा रह गया, राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ, पीछे देखा तो एक सुन्दर कन्या को नख से शिख तक लावण्यता से भरी हुई खड़ी अति प्रसन्न चित्त पाया, राजकुमार ने दौड़ कर और अपने शिरको झुका कर उसको धन्यवाद दिया, और अनुग्रहीत हुआ, यह कहते हुए कि हे सुलोचने ! यदि इस समय आप मेरी सहायता न करतीं तो मैं इस क्रूर दुष्ट सिंह का ग्रास बनगया होता, और मेरे माता पिता मेरे मरने का हाल सुनकर संताप की अग्नि से भस्म होकर छार होजाते. आपने तीनों जीवों की रक्षा की, ऐसी उपकारिता के बदले में कोई प्रति उपकारिता मेरे दृष्टिगोचर नहीं है, कन्या ने कहा हे राजकुमार ! मैंने तो कोई विशेष सराहनीय कार्य नहीं किया, जो आप मेरी इतनी प्रशंसा करते हैं, मैंने तो केवल अपने पिता की आज्ञा को पालन किया है, उनका उपदेश है कि जीव की रक्षा करना मनुष्यमात्र का धर्म है. परमात्मा ने मनुष्य को ही बुद्धि विशेष देकर और जीवों का अधिपति बनाया है. राजकुमार मुसकराता हुआ कहता है कि हे कमलनयनी ! आपने एक जीव को बचाकर दूसरे जीव का वध किया, क्या आपको पाप नहीं

लगा, कन्या उत्तर देती है कि हे आर्यपुत्र ! यह बात नहीं, सब जीव बराबर नहीं होते हैं, उनकी प्रतिष्ठा उनकी उपयोगिता के आधीन होती है, एक साधारण पुरुष अपने ही पेट को नहीं पाल सकता है, दूसरा असाधारण पुरुष यानी नरेश करोड़ों जीवों के पालन पोषण का आधार होता है, दोनों बराबर कैसे हो सकते हैं, कहीं हीरे की बराबरी स्फटिक भी कर सकता है, कहीं कामधेनु गौ की बराबरी इतर गौ कर सकती है, कहीं कल्पवृक्ष की बराबरी बबूल वृक्ष भी कर सकता है, कहीं गंगा के गुणों को और नदियां भी पासकती हैं ? जो उपयोगिता शूद्र से होती है वह पशु पक्षी से नहीं, जो वैश्य से होती है वह शूद्र से नहीं, जो क्षत्रिय से होती है वह वैश्य से नहीं, जो ब्राह्मण से होती है वह क्षत्रिय से नहीं, और जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से होती है, वह साधारण ब्राह्मण से नहीं, और यही कारण है कि एकसे दूसरा श्रेष्ठ और पूजनीय होता है. आप राजकुमार हैं, जब आप राजगद्दी पर बैठेंगे असंख्य जीवों का कल्याण करेंगे, यदि आपको सिंह मारडालता तो करोड़ों जीवों को हानि पहुँचती, और उस सिंह के जीवन से अन्य जीवों का क्या कल्याण होता, उस के बदले दस बीस को दुःख ही पहुँचता, इस विचार

से मैंने आज बड़ा पुण्य कमाया है, और मेरा पिता मेरे प्रशंसनीय कार्य को सुनकर अतिहर्षित होगा, अहो, मेरे भाग्य जो आज आप के निमित्त कारण द्वारा मुझको अपने पिता की आज्ञापालन करने का अवसर मिला. संसार में वही पुत्र पुत्री प्रशंसनीय होते हैं जो अपने माता पिता की शुभ इच्छानुसार चलकर उनके दिलको आनन्द करते हैं, और संसार में यश उठाते हैं, राजकुमार ने कहा, हे चन्द्रमुखी ! मेरा जी चाहता है कि मैं आपके पिता से मिलूं, और उनको धन्यवाद दूं. यदि आपको मेरे लेचलने में कोई प्रतिबन्धक न हो, उसने जवाब दिया आप बड़े हर्ष के साथ चलें, दोनों एक दूसरे से बात चीत करते चले जाते हैं.

थोड़ी देर के पीछे एक सुन्दर पवित्र पर्णकुटी के पास पहुँच गये, कन्या राजकुमारको द्वारपर ठहरा कर अन्दर गई, और अपने पिता से सारा वृत्तान्त कह सुनाया, वह शीघ्र बाहर आनकर उस राजकुमार को अन्दर लेजाकर उसको अर्घ पाद्य दिया, और बड़ा आदर सत्कार किया. राजकुमार राजऋषि को दण्डप्रणाम कर उनकी आज्ञानुसार एक स्वच्छासन पर विराजमान होगया, और कहा, कि हे प्रभो ! आपकी कन्या ने मुझको मृत्यु के ग्रास से बचालिया, इस कारण मैं आपको धन्यवाद

देता हूं, यह सुनकर ऋषि महाराज ने कहा कि हे राजकुमार ! मेरी पुत्री आपको सिंह के ग्रास बनने से बचाकर मेरे स्वर्गीय सुखसदन की कारण बनी, और अपने को कृतकृत्य किया और मेरे वंश के प्रकाश करने में चन्द्रमा हुई, यह मनुष्य शरीर भी और जीवों के शरीर की तरह मलमूत्र से भरा है, पर इसकी उपकारिता; इसकी श्रेष्ठता का कारण है, नहीं तो उन सबसे भी निकृष्ट है, देखो जड़ जीवधारी फलवृक्ष सूर्य के ताप से तपते हैं पर अपने शरण आये हुयों को अपनी शीतल छायासे आनन्द देते हैं, और जब फलों करके सुशोभित होते हैं, तो जो कोई उनपर दण्ड प्रहार करके उनको दुःख देता है तो वे उसके बदले में फल देकर उसको सुख देते हैं.

अन्न अपने को पिसाकर अपने भक्षणकर्ताको तृप्त करता है, और उसके शरीर के पालन पोषण का कारण बनता है, गाय घास के बदले अमृतरूपी पय देती है, और उसका बच्चा अपने मालिक की उपकारिता को न भूलकर उसके और उसके बाल बच्चों के जीवनार्थ अति कष्ट उठाकर अन्न उत्पन्न करता है, अश्व घास फूस के बदले अपने स्वामी को अपनी पीठ पर लादे लादे फिरता है, हे सौम्य ! जिधर देखो उधर जीव परोपकार

करते ही दीख पड़ते हैं, पर मनुष्य ही एक जीव है, जो सदा स्वार्थपरायण रहता है, इसलिये इसका सारा शरीर निष्फल है, पर यह बुद्धि की तीव्रता के कारण और जीवों का रक्षक बन सकता है, यही इसकी श्रेष्ठता है जो और जीवों में नहीं है, इसकी दुःख युक्त परोपकारता इसके अविनाशी आनन्द का कारण होती है, हे राजकुमार ! आकाश अपने शरण आये हुए सूर्य, चन्द्र, तारागण, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और उन करके उत्पन्न हुई सम्पूर्ण सृष्टि को, अपने में रखकर उनका पालन पोषण करता है, यदि आकाश न हो तो किसी की स्थिति नहीं हो सकती है, जैसे सब तत्त्वों में प्रथम आकाश है, वैसेही सब जीवों में प्रथम मनुष्य है, और जैसे आकाश के आश्रय सब भूत हैं, वैसेही मनुष्य के आश्रय सब प्राणी हैं, सहन शीलता में मनुष्य पृथ्वीवत्, जीव की रक्षा में जलवत्, दुष्ट या शत्रुवों की नष्टता में अग्निवत्, और बलमें वायुवत् होना चाहिये हे राजकुमार ! पृथ्वी की तरफ़ देखो, कोई इसको अन्नादिके लिये, कोई इसको मणि आदि के लिये, दुःख देता है, पर यह उस दुःख को सहलेती है और उसकी कामनाओं को पूर्ण करती है, और इसी लिये यह बड़ी शोभा को प्राप्त है, हे चन्द्रकान्त !

जितने श्रेष्ट पुरुष होगये हैं, और जिनका यश और कीर्ति आजतक संसार में विख्यात है दूसरे के अर्थ दुःख उठाने से ही हुई है, यही धर्म है, यही मर्यादा है, यही सेव्य है, इस प्रकार की बात चीत में कई घंटों का अरसा होगया, भानू भोजन पकाकर बैठा है, राजकुमार की राह देख रहा है, ज्यों ज्यों राजकुमार के आने में देरी होती है त्यों त्यों उसको व्याकुलता होती जाती है, उसकी दृष्टि राजकुमार के राह की तरफ़ ऐसी लगी है जैसे चकोर की चन्द्रमा की और लगी रहती है. जब बाट देखते देखते वह थक गया, और उसके नेत्र में आंसू भर आया, दिल दुःखित होगया, तब वह परमहंसजी के पास आनकर कहने लगा, हे स्वामीजी! राजकुमार प्रभात समय का गया हुआ, अभीतक नहीं आया मेरा जीवात्मा अतिदुःखी हो रहा है, स्वामीजी ने समाधि लगाकर देखा, तो मालूम हुआ, कि वह राजऋषि महाराज के पास बैठा है, भानू को राजकुमार के ले आने की आज्ञा दी, वह गया; राजऋषि ने उसका अतिथि सत्कार किया, ऋषि कन्या को देखकर और राजकुमार के ऊपर सिंह के आक्रमण करने का, और ऋषिकन्या द्वारा उसके बचने का हाल सुनकर हर्ष और शोक दोनों ने, उसके

हृदय को हलचल कर दिया, हर्ष तो उसको चन्द्रमुखी कन्या देखकर और राजकुमार को कुशल मंगल पाकर हुआ, और शोक इस कारण हुआ कि यदि सिंह राजकुमार को मार डालता तो वह संसार को क्या मुँह दिखाता, सेवकाईधर्म से च्युत होकर विश्वासघातक कहलाता, सेवकाईधर्म अतिकठिन है, इसीसे माता पिता, भ्राता प्रसन्न रहते हैं, इसीसे गुरु महात्मा मुमुक्षु को उच्च पदवी पर प्राप्त करदेते हैं, इसीसे संसार में श्रेष्ठता मिलती है, और इसी द्वारा भक्त ईश्वर को प्राप्त होकर मुक्त होजाते हैं, परमात्मा ने मेरे इस धर्म की रक्षा की, फिर अपने मनमें सोचने लगा कि यह दिव्य कन्या निस्सन्देह राजकन्या है, और जाति की कन्या में इतना साहस कहां हो सकता है जो सिंह का सामना करसके.

यदि ईश्वर की कृपा से इस कन्या का विवाह मेरे राजकुमार से होजाय तो मेरा बिगड़ा राज बनजाय, जैसे राजकुमार सब गुण सम्पन्न हैं, वैसेही यह कन्या भी मालूम होती है, जोड़ का तोड़ ठीक है, एक दिन और एक रात्रि राजकुमार और भानू, राजऋषि महाराज के अतिथि रहे, और उनका सन्मान यथोचित किया गया, भान ने देखा ऋषिकन्या अपने कर्म धर्म

में अतिश्रेष्ठ है, सूरत शकल में जनकतनया के तुल्य है, बोलचाल और विद्या में सरस्वती का अवतार है.

दूसरे दिन महात्मा का आशीर्वाद पाकर राजकुमार और भानु अपने स्थान को लौट आये, और सारा वृत्तान्त वहां का परमहंस महाराज को सुनाया, उनको राजऋषि से मिलने की बड़ी उत्कण्ठा हुई, तीसरे दिन उषःकाल के होते ही वह साहित राजकुमार भानु, और अपने शिष्यमंडली के चल पड़े, और थोड़ी देर में राज-ऋषि के पास पहुँच गये, लौकिक शिष्टाचार के पश्चात् दोनों ऋषि एक जगह अपने अपने मृगचर्म पर बैठ गये, और ऐसे शोभायमान दिखाई देते थे कि मानो आज कैलास पर शिव और विष्णु महाराज विराज-मान होरहे हैं, उनका तपोबल आश्चर्यमय दृश्य को दिखा रहा है, ऋतु और बे ऋतु के फल फूल वृक्षों में लग गये हैं, जीवजन्तु सब के सब हर्षित होरहे हैं, सब वनस्पतियां हरी भरी हैं, इन्द्रदेव वर्षा करके और कूड़ा कबार गर्द गुबार को बहाकर अभी चले गये हैं चारों दिशा निर्मल सुहावनी भास रही हैं, बहुप्रकार के कौशेयवस्त्र और भोजनसामग्री एकत्र हैं, ऐसे आनन्द का समय पाकर भानु हाथ जोड़ कर कहता है:—

भानुः—हे भवसागर के पार करनेहारे, और अवि-

नाशी सुख के देनेवाले, यह राजकुमार जो आपके सन्मुख आसीन हैं मगधनरेश के पुत्र हैं, इनके पिता का नाम सुरेशचन्द्र है, और माता का नाम रानी इन्दुवती है, मगधदेश का राज्य सम्पत्ति से भरा हुआ था, इसके धर्म का पताका चारों दिशाओं में फहरा रहा था, अनेक प्रकार की विद्याओं का सदन था, वणिज व्यापार देश देशान्तरों तक फैला था, राजविभव का दबदबा चारों ओर छाया था, राजा प्रजा के जान माल की रक्षा निरन्तर किया करता था, कोई किसीको सता नहीं सकता था, नीति दयायुक्त सबको एकसी हस्तगत रहती, सुकृति चारों ओर लहर मारा करतीं, सब के सब चिन्तारहित प्रसन्न रहते, लालच देश को छोड़ गया, उसकी जगह संतुष्टता आ गई, लड़ाई झगड़े की निवृत्ति और शान्ति की वृद्धि हो रही थी, पर हे प्रभो ! जैसे दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन होता है वैसेही दुःख के पीछे सुख और सुख के पीछे दुःख आता है, किसीकी एकरस स्थिति नहीं रहती है, राजा के पूर्व शुभकर्म फल देकर शान्त होगये, अशुभ कर्म उदय होआये, सुख चल दिया, दुःख आन पहुँचा, जिधर हाथ डाला उधर खाली गया, खुशी के बदले रंज, और लाभ के बदले हानि

होने लगी, ब्रह्मा का राजा, भद्रराज श्रावक (जैनी) का सितारा उच्च पर होरहा था, मेरे राजा के पास जैन मत ग्रहण करने को अपना प्रतिनिधि भेजा, उसने आनकर अपने मत की श्रेष्ठता दिखला कर बहुत समझाया, पर राजा ने जैनमत को स्वीकार न किया, और कहला भेजा कि ईश्वर ने मुझको सनातनधर्म में उत्पन्न किया है, और आपको जैनधर्म में, जो जिसमें है वही मत उसको कल्याणकारक है, ईश्वर सब का एक है, न कोई श्रेष्ठ है न अश्रेष्ठ है, जिस परमात्मा को आप अपने मत अनुसार भजते हैं, उसी को मैं भी अपने मत अनुसार भजता हूं, जिन पांच तत्त्वों से आपके शरीर की उत्पत्ति है, उन्हीं तत्त्वोंकरके मेरे शरीर की भी उत्पत्ति है, इसलिये हम और आप भ्रातृसम्बन्ध रखते हैं.

यह बात ब्रह्मा के नरेश को बुरी लगी, वह बड़ा अहंकारी और प्रमादी था, अकारण मगधदेश पर आक्रमण कर बैठा, और इस तरफ़ के सेनापतियों को अपने में मिला लिया, उग्रसंग्राम हुआ, सब जीवों के लिये महाप्रलय आगया, पृथ्वी शूरवीरों के रक्तसे लाल होगई, खून की नदी बह चली, मगधदेश के लाखों पुरुष गर्दमर्द होगये, बच्चे माता पिता हीन अनाथ फिरने लगे,

प्रजा लुट गई, देश में विपत्ति छा गई, घर घर रोना धोना होने लगा, जो गृह पहिले फूलों से खिला था, वह अब काँटों से भर गया, लूट पीट धार मार चारों तरफ़ होने लगी, राजा रानी संग्राम में खूब लड़े, शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये, कीर्ति अपनी दिखा दी, पर प्रारब्ध को कौन हटा सकता है, श्रावक राजा की जीत, और हमारे राजा की हार हुई, राजा रानी पकड़े गये, अपने विराने से अलग किये गये, राजकुमार को मेरी गोद में डाल कर रोते हुये कहने लगे, हे भानु ! तू हम लोगों का विश्वास पात्र सेवक है, तू आज से इस दुःखी दीन बालक का माता पिता बन, इसकी रक्षा कर, जहां कहीं तेरी इच्छा हो जा, यह राजपुत्र यदि ईश्वर की कृपा से जीता रहा तो अवश्य राजा से बदला लेगा, और हम दोनों के आनन्द का कारण बनेगा, बदला लेना क्षत्रियों का परम धर्म है, नहीं तो उनका उत्पन्न होना वृथा है, जब यह हमारा लाल लालित्य (जवानी) को प्राप्त होगा तब शत्रुओं के शरीरों को संग्रामभूमि में चैत्रमास के पलाश वृक्ष के फूल की तरह अपने बाणों से ललित करदेगा और हम लोग यदि मृत्यु को प्राप्त भये तो स्वर्ग से तेरे और इस बालक के धर्म के देखने को बड़े अभिलाषी रहेंगे, हे प्रभो ! यद्यपि क्षत्रियों का हृदय सिंहवत्

कठोर होता है पर पुत्र की तरफ़ जो सब जीवों का स्नेह होता है वह ऐसे कठोर को भी मोम बना देता है, राजा रानी को राज्य भंग होने का इतना दुःख नहीं था जितना उनको अपने प्यारे पुत्र से वियोग होने का था, क्या कहूं, राजा रानी के उस काल की दशा को स्मरण करके अब भी मेरा हृदय फटने लगता है, जिस समय मैंने उनके बाल बिखरे हुये, मुँह कुम्ह-लाये हुये, तनक्षीन मनमलीन देखा, धरणी पर गिर पड़ा, मुझको व्याकुलता ने घेर लिया, राजा, रानी कहने लगे हे भानु! सँभल, तेरे सिपुर्द मैंने अपने लाल को किया है, उसकी जुदाई, देश की बरबादी, प्रजा की परेशानी; अपनी तबाही, मेरे हृदय को विदीर्ण कर रही है.

हा, हे प्रभो! जिस मुख को देखकर चन्द्रमा लज्जित होता था, जिसके तेज के सामने सूर्य निकलते समय हिचकता था, जिसके नेत्र को देखकर कमल खिल उठता था, जिसके चेहरे की प्रभा को देखकर कुमुदिनी प्रफुल्लित होजाती थी, वही मुख आज दुःखों के ताप से संतप्त होकर काष्ठवत् सूख गया है, जिस रानी की भृकुटि टेढ़ी होते ही सहस्रों पुरुषों के हृदय कम्प उठते थे, और जिसके चन्द्रमुखी चेहरे पर मंदहास आतेही

लोगों के दिल कमलिनीवत् विकस जाते, हा, आज वह सूखकर कांटा हुई दिखाई देती है, हे विधना! तेरी गति निराली है, तू गोपद जल को समुद्र बना देता है, और समुद्र को गोपद जल के तुल्य कर देता है, मेरा जो हाल उस समय था वह अकथनीय था, न राजा रानी का साथ दे सकता था, और न राजकुमार को छोड़ सकता था, पर यह सोच कर कि जब कभी माता पिता का दुःख दूर होगा तो केवल पुत्रही करके दूर होगा, इसलिये राजकुमार को अपने साथ लेकर और राजा रानी की आज्ञा पाकर भाग निकला, एक पक्षतक साधु की सूरत में छिपा हुआ और राजकुमार को कंधे पर बैठाले हुये दिनों रात चलता रहा, जब निर्भय देश में पहुँचा, जी में जी आया, मैंने आज तक सच्चा हाल गुप्त रक्खा, और राजकुमार के सामने दम्भी बना रहता, यह सोचकर कि मेरा रोना और उदास रहना प्रिय राजकुमार को संशययुक्त करता, और उसके पूछने पर यदि मैं सारा वृत्तान्त उसको सुनाता तो वह शोक के सागर में डूबकर अपना अमूल्य जीवन खो बैठता, आज मैंने पुराना समाचार इस कारण सुनाया है कि अब राजकुमार युवा अवस्था को प्राप्त हैं, आप महात्मा की कृपा करके विद्या से सम्पन्न हैं, क्षत्रियत्व

धर्म के ग्रहण करने के योग्य हैं, वह अपने बाहुबल और आप लोगों के आशीर्वाद करके अपने माता पिता के छुड़ाने में समर्थ हैं, वही पुत्र सराहनीय होता है जो अपने माता पिता को तीनों दुःखों से मुक्त कर देता है, युधिष्ठिर महाराज ने, अपने पिता पाण्डु के मानसिक दुःख को जो स्वर्ग में तारतम्यता के कारण होता था नारद से सुनकर राजसूय यज्ञ करके दूर किया, और उनका नाम आज तक इस भूमंडल विषे प्रसिद्ध है; अब राजकुमार भी अपनी कीर्ति को दिखावैं, और संसार में सुयशी बनैं, मेरा एक धर्म ईश्वर की कृपा से पूर्णता को प्राप्त होगया है, दूसरे धर्म की पूर्णता निमित्त मेरी तीव्र इच्छा होरही है कि शीघ्र अपने प्राण को अपने स्वामी के कार्य में अर्पण कर उनको बन्धन से छुड़ाकर राजगद्दी पर बैठालूं या रणक्षेत्र में शूरवीरों की गति को प्राप्त होकर स्वर्ग में पहुँच कर अपने स्वामी के भोगार्थ भोगसामग्री को एकत्र कररक्खूं, और अपने सेवकाई धर्म से उत्तीर्ण होजाऊं, यह सुनते ही राजकुमार में क्षत्रियत्व धर्म उमंग कर हर एक अंग में प्रकट होआया, भुजा फड़क उठीं, नेत्र रक्ताकर होगये, भौंहैं कमान की तरह चढ़गईं, पलकों की वरौनियां भालों के आकार में खड़ी

होगई, ओष्ठ फड़कने और दांत कटकटाने लगे, उस को देखकर मालूम होता था कि युद्धने स्वतः आनकर राजकुमार के शरीर में प्रवेश कर उसको युद्धाकार बना दिया है, वह खड़ा होकर महर्षियों का चरण स्पर्श कर बोला कि हे प्रभो ! सूर्य चन्द्रदेव की साक्षी देकर मैं प्रतिज्ञा करताहूं कि यदि मैंने एक मास के अन्दर शत्रुवों को जीत कर माता पिता को बंधन से छुड़ाकर उनको राजगद्दी पर बैठाल न दिया तो मैं अपने शरीर को अग्नि में दाह करदूंगा, आज से न अन्न खाऊंगा, न शय्या पर शयन करूंगा, और न क्षौरकर्म करूंगा जब तक मैं अपने माता पिता के चरणकमल का दर्शन न करलूंगा. यह सुनकर कन्या चम्पावती भी उठ खड़ी होगई, यह कहतीं हुई कि हे राजकुमार ! मैं आपको मित्र कहचुकी हूं, अपने मित्रता धर्म से कभी च्युत न होऊंगी, आपकी सहायक बनकर इस अतुल्य धर्म में आपके साथ भाग लूंगी, पिता का उपदेश है, कि दुःखी का दुःख दूर करना अतिश्रेष्ठ धर्म है, इसका अवसर आज आपके द्वारा मुझको प्राप्त हुआ है, यह बार बार नहीं मिलता है, जब ईश्वर की अतिकृपा होती है तब मित्र के साथ मित्रता करने का अवकाश मिलता है.

हे राजकुमार ! जिसका कोई सहायक नहीं होता है, उसका सहायक ईश्वर खुद बनकर उसके कार्य को सिद्ध करता है, सहायता का करनेवाला तो केवल निमित्त कारण बनकर यश कमाता है, और प्रशंसा का पात्र बनता है, यदि मैं आपकी सहायता न भी करूं तो भी आप विजय को प्राप्त होवेगें, पर मेरी अपकीर्ति संसार में होजायगी, दुनिया हँसेगी कि मित्र का साथ मित्र ने आपत्तिसमय नहीं दिया, यह अपकीर्ति मेरे लिये मृत्यु से बढ़कर होगी यह वृत्ति कि मैं अपने मित्र का साथ दूंगी, उनके धार्मिक कार्य में भाग लूंगी, और उनके माता पिता राजा रानी जो धर्म के पीछे दुःख उठा रहे हैं अपने प्यारे पुत्र को देखकर बड़े हर्ष को प्राप्त होवेंगे और उनके उस सुख की प्राप्ति में मैं भी निमित्तकारण बनूंगी मेरे हृदय को आनन्द से भरे देती है, और जब इस वृत्ति की पूर्णता होजायगी तो फिर मुझको अकथनीय आनन्द होगा, यह सुनकर राजकुमार कहता है कि हे चन्द्रमुखे ! एकबार आप मेरे प्राण की रक्षक हो चुकी हैं, उस आपकी अद्वितीय बहादुरी ने मेरे हृदय से शुद्ध प्रेम की नदी का प्रवाह आपकी तरफ़ बहा दिया है, और आज आपकी उद्यताने मेरे सहा-

यक वननेकी ऐसे कठिन समय ऐसे कठिन कार्य में मेरे उत्साह को आकाश तक पहुँचा दिया है, और मेरी धैर्यता, शौर्यता, वीरता को सहस्त्रों गुणा बढ़ा दिया है, विजय का शब्द मेरे श्रोत्रगोलक में अभी से गूंज रहा है, मेरी कामना हे देवी ! आप के प्रसाद करके अवश्य पूरी होगी, आप मुझको सरस्वती तुल्य दीखती हैं, राजऋषि देवव्रत चम्पादेवी के पिता का हृदय अपनी कन्या के पुरुपार्थी वाक्य को सुनकर आनन्द के मारे गद्गद होगया, उनका नेत्र डब-डबा आया, वह ऐसें प्रेम में मग्न होकर निम्न प्रकार कहने लगे.

राजऋषिः—हे राजकुमार ! तुम्हारे पिता राजा सुरेश-चन्द्र मेरे सम्बन्धी होते हैं, मैं उत्पाददेश का राजा हूं, जिस शत्रु ने तुम्हारे पिता के राज्य को भंग किया, उसी ने मेरे राज्य को भी नष्ट भ्रष्ट किया, मैं चम्पावती को जो उस समय केवल पांच वर्ष की थी लेकर भाग निकला, इसकी माता बड़ी सौभाग्यवती थी, वह राज्य भ्रष्ट होने के दो वर्ष पहिलेही संसार के क्लेशों से मुक्त होकर स्वर्गनिवासी होगई, और अपने उदर से निकले हुये इस चन्द्रमणि को मेरे सिपुर्द कर गई, हे राज-कुमार ! यह माणि वह मणि है जिसका मूल्य अमूल्य है

यह नीति और धर्मशास्त्र की ज्ञात्री है, अस्त्र शस्त्र में निपुण है, तप में अद्वितीय है, वैराग्य ज्ञान में शिरोमणि है, कर्म धर्म में दृढ़ है, धैर्यता और शौर्यता में अकम्पायमान है, विश्वास में पर्वत तुल्य अचल है, यह मुझको प्राण से भी अधिक प्यारी है, और मेरे को भवसागर से पार होने के लिये अलौकिक नौका है, आज इसके क्षत्रियत्वसम्बन्धी वाक्य ने मेरे सारे दुःखों को नाश करादिया है, और मेरा सारा परिश्रम इस को देवकन्या बनाने में सुफल होगया, यह तुम्हारा रण में पूरा साथ देगी, और शत्रुओं को पीठ न दिखावेगी, तुम अपनी आंख से इसकी कीर्ति को देख लेना, मैंने संन्यस्त ले लिया है, इसलिये मुझको अब शस्त्र ग्रहण करने का अधिकार नहीं है, नहीं तो मैं भी तुम्हारा साथ देता, और क्षत्रियत्व धर्म का पालन करता, इसके पश्चात् ब्रह्मर्षि नीचे प्रकार कहनेलगे.

ब्रह्मऋषिः—हे पुत्र ! तुम ब्रह्मविद्या से सम्पन्न हो, स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों से पृथक् हो, अमर हो अजर हो, न तुमको शस्त्र काट सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल गला सकता है, और न वायु सुखा सकता है, जब इतने बड़े बलवान् देवता तुम्हारा एक रोम भी टेढ़ा नहीं कर सकते हैं तो मनुष्य शत्रु

तुम्हारा क्या कर सकता है, तुम अशंक होकर गजेन्द्र की सूरत में गजयूथों में घुस पड़ो, और उनको तितर-बितर कर भगादो, माता पिता को बन्धन से छुड़ावो और उनको राजगद्दी पर बैठालो, दुःख दूर करके उन को सुख दो, पुत्र ऋण से उत्तीर्ण होकर संसार में अपूर्व कीर्ति को प्राप्त हो.

हे पुत्र! तुम राजकुल में उत्पन्न हुये हो, युद्ध करनाही तुम्हारा उत्तम धर्म है, उससे हटना अधर्म है, हे पुत्री, चम्पावती! तुम्हारी प्रशंसा मैं नहीं कर सकता हूं, जिसका पिता दूसरा विश्वामित्र राजऋषि हो, और उसकी पुत्री तुम सरीखी हो तो आश्चर्यही क्या है, हे पुत्री! तुम शैलसुताहो, जगन्माता हो, तुम्हारे अंग अंग में विजय विराजमान है, तुम योगमाया हो, जिधर तुम उधर विजय, मेरे प्रसाद करके तुम्हारी इच्छानुसार चतुरंगिनी सेना हरदम गुप्तरूप से तुम्हारे सम्मुख स्थित रहैगी, और तुम्हारी इच्छा प्रकट होतेही वह सेना भी प्रकट हो आवेगी, और शत्रुवों से रणभूमि में जुट जावेगी, मेरे समीप आओ, इस मंत्र को कंठाग्र करलो, चम्पावती देवी ने वैसाही किया, जब मंत्र ग्रहण कर कुशासन से उठी, उसका बायां अंग फड़क उठा, विजय की आशा दिल में पड़ी, मुखारविन्द खिल उठा.

नेत्र में विजय का जल लहर मारने लगा, श्रोत्र में जयकी ध्वनि होने लगी, थोड़ी देर के पीछे कुटी के यज्ञशाला में राजकुमार और राजकुमारी दोनों गये, और राजऋषि महाराज के आज्ञानुसार दिव्य अस्त्र शस्त्रों को ग्रहण कर बाहर निकल आये, उनको देखकर सब चकित होगये, चम्पावती नर वेष के धारण करने पर मालूम होती थी कि यह राजकुमार चन्द्रकान्त का लघु भ्राता है, और दोनों देवलोक से उतर आये हैं, आगे बढ़े चतुरंगिनी सेना प्रकट होगई, तीन घोड़े उच्चैःश्रवा घोड़ों के आकार में खड़े थे, उनपर राजकुमार राजकुमारी और भानु महाप्रतापी सवार होगये; संग्रामी बाजे बजने लगे, फौज चली, आकाश में देवतावों की दुन्दुभी बजी, वायुदेव ने इस सुहावनें शब्द की गूंजकी भनक को उड़ाकर राजा रानी के कर्णगोलक में पहुँचा दिया, एकाएक दोनों चौंक पड़े, इधर उधर देखने लगे, कहीं कुछ न दिखाई दिया, न सुनाई दिया, पर जो कान में भनक पड़गई, उसके तरफ़ से वृत्ति हटती भी नहीं, मनमें कुछ कुछ प्रसन्नता, और दिल में गुदगुदी सी उठने लगी, शरीर रोमांचित होने लगा, नौ वर्षतक ऐसी अघटित घटना बंदिशाला में कभी घटित न हुई, राजा रानी से कहते हैं, हे प्राण-

प्यारी ! क्या मेरा वक्षःस्थल लोह या पत्थर का है, जो पुत्र के वियोग होते ही चूर चूर न हो गया, और जीवात्मा प्रयान न कर गया, आसमान मेरे ऊपर क्यों न टूट पड़ा, या धरती क्यों न फटगई जिसके अन्दर मैं समाजाता.

हे कमलनयनी ! मूसलाधार पानी बरसता रहा, बादल भयानक शब्दों के साथ गरजता रहा, पर वज्रने मुझ को घोर पापी समुझकर मेरे ऊपर गिर करके मुझको नाश नहीं करादिया, तारेगण अग्नि की सूरत में प्रकाशमान दिखाई देते हैं, पर मुझको भाग्यहीन जानकर मेरे ऊपर नहीं गिरते हैं, हे प्राणप्यारी ! तू मेरे जीवन की आधार है, हे देवी ! तू मेरे विपत्ति की साथी है, और मेरे दुःख को तू अपने शिरपर ऐसे रक्खे हुये है, जैसे शेषजी पृथ्वी के भारको अपने शिरपर उठाये हुये हैं, हे कमललोचने ! हे दुष्टदमनी ! हे मनोगत कामना की पूर्ण करनेहारी ! अपने तपोबल से बतावो, क्या मेरे नेत्रों का तारा, मेरे प्राणों का प्राण, मेरा नन्हा बच्चा, अपने पिता वंश का सूर्य, अपने माता वंश का चन्द्रमा, कुशलमंगल से तो है, आज मुझको उसका स्मरण बार बार हो आता है, क्या कारण है मैं नहीं कह सकता हूं.

-क्या भानु ने उसको छोड़ दिया है, क्या शत्रु ने उसको नाश करादिया है, और उसका जीवात्मा मेरे आसपास भ्रमण कररहा है, शीघ्र बताओ यह क्या बात है, मेरा हृदय टूकटूक होता जाता है, उसमें शोक की अग्नि भड़क रही है, मुख मेरा सूखा जाता है, मैंने कल रात्रि विषे स्वप्न देखा है, कि मेरे प्यारे धर्मावलम्बी पुत्रने अस्त्र शस्त्र धारण किये हुये विद्युत की तरह चमकती हुई तलवार से मेरे कारागार के शलाकावों को काटकर मुझको और तुमको बन्धन से मुक्तकर अपने साथ लेजाकर राजगद्दीपर बैठाल दिया है.

हे सुलोचने ! यह स्वप्न देखकर मेरा जी डर रहा है, स्वप्न सदा सत्य नहीं होताहै, कभी कभी उसका उलटा फल होता है, हे मेरी अर्धाङ्गिनी ! मैं इस दुःख से करोड़ों गुणा अधिक असहनीय दुःख सहने को तैयार हूं यदि यह खबर मिलती रहे कि मेरा प्यारा पुत्र, मुझको भवसागर से पार करानेहारा, कुशलमंगल से है, उसके कुशलमंगल की वृत्ति मुझको दुःखों के सहने में समर्थ करती रहैगी, रानी उत्तर देती है.

रानीः—हे प्राणनाथ ! आप क्यों इतने अधीर हो रहे हो, जो ईश्वरशरण है, वह अभय है, सिंहशरण होकर शियार को कौन डरता है.

जलविन्दुवत् सुख, दुःख इस भवसागर में उत्पन्न और नाश हुआ करते हैं, न वह रहता है न यह रहता है, हे स्वामी! जो हरिभक्त होते हैं उनकी श्रद्धामें दृढ़ता देखने के लिये उनकी परीक्षा उन्हीं के कल्याणार्थ ईश्वर उनपर कभी कभी दुःख अकस्मात् डालकर लेता है, और जब उनको अचल पाता है तो अन्त में उनको अविनाशी सुख देता है, जैसे कोई बोझियल स्वेच्छा लालच में आनकर अनेक बोझों को अपने शिरपर रखलेता है, और उनसे दबकर बहुत कष्ट उठाता है, पर लालचवश उनको फेंकता नहीं है, पर जब उसका स्वामी उसको दुःखी देखता है तब दया-युक्त होता हुआ उसके शिर से एक एक करके सब बोझों को गिरा देता है, और जब सब गिर जाते हैं तब वह अपने को हलका पाकर बड़े हर्ष को प्राप्त होता है, तैसे ही जब ईश्वर देखता है कि मेरा भक्त राज, पुत्र, कलत्र के भार से भवसागर में डूब रहा है तब उस पर दया करके उसके शिर से वह बोझ थोड़े कालके लिये उतार देता है, परन्तु उसमें ममता के कारण वह हर्ष के बदले शोक करने लगता है यह जानता हुआ कि ईश्वर ने मुझ को दुःखी, दीन, धनहीन बना दिया मैं किसी काम का न रहा, मेरे कुल सुखसामग्री को

हर लिया, मैं अनाथ होगया, मेरा जीवन अब निष्फल है, यह नहीं समझता है कि प्रभुने मेरे अविनाशी सुख के मार्ग से मेरे जन्म के शत्रु काम की सेना को हटा करके मेरे मनके वृत्तिरूपी तारको अपने चरण-कमल में बांध दिया है, ताकि उस अकम्पायमान तार द्वारा विना प्रयासही उसका जीवात्मा मेरे सन्निधि में पहुँच जावै, हे स्वामी ! जैसे मधुग्राही पुरुष मधु के लिये मधुछत्ता के पास वार वार जाता है, और मधु-मक्षिका के डंकों को सहता है, और अतिकष्ट उठाता है, तैसेही संसारी विषयी पुरुष राज, धन, पुत्र, कलत्र के डंकों से डंकित हुआ, और उनके परिग्रह के बोझसे दवा हुआ असहनीय दुःख उठाता है, और अज्ञानता के कारण उनसे भागने की इच्छा नहीं करता है, हे राजन् ! आप बहुत कालतक ऐसे बोझसे दबे हुये थे, उस परमदयालु ने थोड़ेकाल के लिये आपके बोझ को आपके शिरसे अलग करादियाताकि आप आराम कर लेवैं, और फिर बोझके उठाने में समर्थ होजावैं, आप क्यों इतना मन करकें दुःखी होते हैं, मनको सबसे खींच लीजिये, सुखी बन जाइये, मनही करके सुख और मनही करके दुःख होता है, आप न घबड़ा-इये, जो दुःख आपको मिला है वह केवल परीक्षार्थ

मिला है, उसको दुःख न समझना चाहिये, इस दुःख में आप अपने प्रभु को स्मरण करते रहे हैं, इसलिये यह अवस्था दुःख की क्योंकर समझी जावे, जो हरिसे प्रेम करता है, उससे हरि भी प्रेम करते हैं, और वह नहीं चाहते हैं कि मेरे प्रेमी का प्रेम किसी दूसरे के तरफ़ जावे. अब आप अपने मनको विषयों के तरफ़ से हटाइये, और प्रभु में मन लगाइये. जब विषय देखेंगे कि आप उनसे हटे जाते हैं तो वह खुद आप के तरफ़ दौड़ पड़ेंगे, और आपको घेर लेंगे, पर आप उनके तरफ़ मुँह न फेरियेगा, चित्तकी वृत्ति को प्रभुके ही तरफ़ रखियेगा, देखो युधिष्ठिर महाराज और राजा हरिश्चन्द्र को धर्म के निर्वाह में कितना दुःख उठाना पड़ा, पर अन्त में कुशल मंगल रहा, हे राजन्! सबकी अवधि होती है, आपके दुःख की अवधि हो चुकी, जैसा आपने स्वप्न देखा है वैसाही होगा. हे प्रभो! हे प्राणरक्षक ! हे जगत्पते ! दृढ़ उपासना अपना फल अवश्य देती है, यदि आपके चित्तकी वृत्ति अपने पुत्र चन्द्रकान्त के पाने में दृढ़ होरही है तो अवश्य वह आपको मिलैगा.

मन बड़ा बलवान् है, जाग्रत् और स्वप्न की सृष्टि को मनही रचता है, सुषुप्ति में जब मनका लय होजाता

हैं, तब सब सृष्टि लय होजाती है, जब उपासक अपने दोनों भौंहों के मध्य में सूर्य का ध्यान करता है तब थोड़ेही अभ्यास के पश्चात् उसी जगह सूर्य दिखाई देने लगता है, जब चन्द्रमा का ध्यान करता है तब चन्द्रमा दिखाई देने लगता है, जब राम कृष्णका ध्यान करता है तब राम कृष्ण दिखाई देने लगते हैं, क्या सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण वहां बैठे थोड़ेही रहते हैं, उनका तो उस स्थान में कहीं पताभी नहीं है, वहां तो केवल हाड़, मांस, रक्त आदिकों का समुदाय है, देखिये कछुआ पानी में दूर रहकर अपनी वृत्ति की धारको जल के किनारे स्थित अण्डों पर फेंककर उनको पका देता है, और उनमें से बच्चे निकल आते हैं; चित्तकी वृत्ति सब कुछ कर सकती है, दुनियां का सारा खेल वृत्ति के ऊपर है, अब समय आगया है, आपका पुत्र १६ वर्ष का होचुका है, पूर्णिमा के चन्द्रवत् सोलहों कला से युक्त है, वह निस्सन्देह यहां आनकर हमलोगों को बन्धन से छुड़ावेगा, और फिर वहां के बन्धन से भी मुक्त करेगा, आप मेरे में विश्वास रक्खें.

हे सूर्यवंशियों में मणि ! मेरे इस कथन से यह न समझना कि मेरा प्रेम मेरे पुत्र की तरफ़ नहीं है, स्त्रीमात्र में सब विशेषण अष्टगुणपुरुष से अधिक

होते हैं, जिस माताने अपने उदर में अपने बालक को नौ महीने तक रक्खा, अनेक प्रकार का दुःख उठाया, शीत उष्ण सहा, रात रात भर बीमारी की हालत में जागरण किया, आप अनुभव कर सकते हैं, कि उसको अपने नन्हे बच्चे के वियोग में, जब वह केवल सात साल का था कितना असहनीय दुःख होता होगा, पर हे प्रभो! स्त्री में धैर्यता और पतिव्रता धर्म इतना अधिक होता है कि वह उसके पालन में अपने शारीरक और आत्मिक दुःखोंको भूल जाती है, और अपने प्यारे पति की सेवा से नहीं हटती है, और उसको प्रसन्न रखने के लिये वह खुद ऊपरी प्रसन्न चित्त रहती है पर एकान्त विषे देखो तो उसके दोनों नेत्ररूपी तड़ाग में से अनेक अश्रुधारा नदियों की सूरत में पुत्र के वियोग में बहा करती हैं, पति के पात होनेपर उसकी पत्नी अपने शरीर को तृणवत् अग्नि में दाह करदेती है, यह उसके सच्चे प्रेम का अनुपमेय प्रत्यक्ष स्वरूप दिखाई देता है, हे देव! जब जब देवताओं पर कठिन दुःख पड़ा है तब तब वह उनकी पत्नीही द्वारा दूर भया है, हे आर्यपुत्र! सुलक्षणा स्त्री पुरुष के लिये अमृतरूप है, इसी द्वारा पुरुषको इसलोक और परलोकमें सुख मिलता है, इसी द्वारा पति नरक के तापसे बचता है, और उसके

सुख के लिये यह साक्षात् पूर्णिमा का चन्द्रमा है, मैं अपने पातिव्रतधर्म के बल से बली हूं, मेरा हृदय कह रहा है कि मेरा पुत्र जीता है, जैसे पवनपुत्र हनूमान्जी श्रीरामचन्द्र के सच्चे सेवक हुये हैं, वैसेही भानू मेरे पुत्र चन्द्रकान्त का विश्वासपात्र सेवक है, यह सम्भव है कि सूर्य पश्चिम में उदय हो, अग्नि में शीतलता और जल में उष्णता आजावै, पर भानू मेरे पुत्र का साथ छोड़ दे, या अपने सेवकाईधर्म से च्युत होजावै, यह असम्भव है, आप शोकको दूर करें, आपका पुत्र शीघ्र आपसे मिलैगा, और भानू भी उसकी रक्षा करता हुआ उसके साथ आवैगा, ऐसा मेरा साक्षी आत्मा कह रहा है.

इस बातचीत के थोड़ी ही देर बाद नगर में हलचल मचगया, कोई किसी की नहीं सुनता है, आह ऊह होने लगा, सेना तैयार होकर नगर के बाहर चली गई. खबर फैल गई कि एक राजा किशोर अवस्थाको प्राप्त हुआ बड़ी भारी सेना लेकर चढ़ आया है.

दूसरे दिन तोपों की गर्ज होनेलगी, और वह शूरवीरों के दिलों को उत्साह देनेलगी, घड़ी घड़ी में खबर आती है कि इधर की सेना हटती आती है, और शत्रुकी सेना बढ़ती आती है, दश दिन तक घमासान युद्ध हुआ, इधर

की हार हुई, शत्रु की जीतहुई, श्रावक राजा पकड़ा गया, उसके राजमहल में हाहाकार मचगया, प्रजा नगर को छोड़कर भाग निकली, अपने अपने जानकी सबको पड़गई, कोई किसी की नहीं सुनता है, निर्बल बली के ग्रास बनगये, विजय का झण्डा राजमहल पर गड़गया, कारागार जिसमें राजा रानी क़ैदथे, आनन फानन तोड़ डाला गया. भानू, चन्द्रकान्त, और चम्पावती राजा रानी के चरणकमल में दण्डइव साष्टांग गिरपड़े, उस समय प्रेम की उष्णता, आनन्द की वर्षा राजा रानी के हृदयरूपी पर्वत पर करने लगी, और वह शुद्ध निर्मल जल नदी की सूरत में वहाँ से दश मुख नेत्र द्वारा निकल कर वक्षःस्थल से वहता हुआ नाभिरूपी क्षीर-सागर में पहुँचकर वहीं लय होगया, और सबका मन भी उसी बहाव में बह निकला, थोड़ी देरतक उसका कहीं पता न लगा, और अवाच्य शिलामूर्तिवत् सबके सब खड़े रहे, पर उसकी कामना ने उसको डूबने से बचालिया और फिर वह अचेत से सचेत होकर अपने सहचारी इन्द्रियों को, जो प्रेम के मधुको चखकर मस्त होकर, अपने कार्य के करने में असमर्थ होगई थीं, उनको जगाया, और वे सब फिर उठकर व्यवहार करने लगीं. राजा रानी अपने चन्द्रकान्त को गले से

बारबार लगाते हैं, और बड़े हर्ष को प्राप्त होते हैं, रानी अपने विश्वासपात्र भानू से कहती है, कि हे भानू ! तुम्हारी उपकारिता का ऋण मेरे ऊपर बड़ा भारी है, उससे मैं कोटिन जन्म भी उऋण नहीं होसकती हूं, और न उसका कोई बदला देसकती हूं, भानू उत्तर देता है कि जो कुछ मैंने किया है, वह अपने धर्म के अन्दर ही किया है, मैंने आपका नमक खाया है, यदि मैंने राजकुमार की सेवा की तो विशेषता क्या की है, जिसके लिये आप मेरा इतना यश मानती हैं, जो वास्तव में प्रशंसनीय है, और जिसने आपके पुत्र को आपकी गोद में डालदिया है, जिसके मुखचन्द्र को देखकर आज आप और राजा समुद्रवत् आनन्द के मारे ऊपर को उछल रहे हैं; वह (अंगुली से दिखा करके) यह है जो अस्त्र शस्त्र संग्रामीवस्त्र धारण किये हुये राजकुमार के वामहस्त की ओर खड़े हैं, और जिनका चेहरा सूर्यवत् प्रकाश कर रहा है. हे रानी ! यह राजपुत्र नहीं है, राजपुत्री है, चम्पावती उनका नाम है, एक राजऋषि की कन्या है; इन्होंने आपके पुत्रको सिंह से बचाकर उन्हें जीवित वापिस मुझको दिया नहीं तो मैं आपको कभी मुँह दिखाने योग्य न होता, और न आप और राजा इस बन्धन से कभी मुक्त होते,

यह सुनतेही रानी ने दौड़कर चम्पावती को उठाकर छाती से लगालिया, और उसके कमलकपोलों को वारवार चूमने लगीं, यह कहती हुई कि हे पुत्री! तू मेरे पुत्रको वचाकर हम दोनों के जीवन का आधार बनी, तू मनुष्यकन्या नहीं है, तू साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है, विष्णु भगवान् ने तुझको मेरे उपकारार्थ मृत्युलोक में भेजा है, इस नये राज्य और पुराने राज्य की तू अधिकारिणी है, हेसुलोचने! मैं तेरे मुख से सारा वृत्तान्त जिस प्रकार तूने राजकुमार की सिंह से रक्षा की, अपने पिता के पास लेगई, और इतनी सेना लेकर मेरे हितार्थ युद्धक्षेत्र में वड़े भारी शत्रु को परास्त किया सुनना चाहती हूं, तत्पश्चात् राजकुमारी ने रानी की आज्ञानुसार आदिसे अन्ततक सारा हाल कह सुनाया, रानी आश्चर्य से भरगई, उसके एहसान के बोझ से दबगई, उसके चन्द्रमुख को चकोरवत् देखने लगी, और जब उसको मालूम हुआ कि चम्पावती उसके सम्बन्धियों में से है तो उसके आनन्द की सीमा का पता न लगा उसके चरण पर गिरपड़ी यह कहती हुई कि हे बेटी! मैं संसार में कोई वस्तु नहीं देखती हूं जो तेरे योग्य हो, और जिसको मैं तेरे अर्पण करूं, पर हे वेटी! अपने आत्मा से वढ़कर संसार में कोई वस्तु प्यारी

नहीं है, यह अमूल्य है, अद्वितीय है, इसके तुल्य न स्वर्ग है, न वैकुण्ठ है, न पृथ्वी है, इसलिये मैं अपने आत्मा चन्द्रकान्त को तेरे अर्पण करती हूं, यह अमूल्य रत्न आजसे तेरा है, मेरा नहीं, यदि वह चन्द्रमणि है, तो तू सूर्यमणि है, जैसे चन्द्रमा की कीर्ति सूर्य करके बढ़ती है, वैसेही मेरे पुत्रकी कीर्ति तुझ करके बढ़ती रहेगी. यह सुनकर चम्पावती लज्जित होगई, रानी के चरणों में गिरपड़ी, चुपचाप उनके पास बैठगई, उसके बदन में मदन ने यकायक सदन करलिया, कठोरता कोमलता में बदल गई, ललाई की जगह गुलाबी आगई, रानी ने कहा हे बेटी! संग्रामी पोशाक को उतारो, इसकी आवश्यकता नहीं रही, राज्यवस्त्र धारण करो, कोठरीके अन्दर गई, रानी की आज्ञानुसार वस्त्रको पहिनकर बाहर आई उसका चेहरा मणियोंकी दमक से चन्द्रमा और चम्पापुष्प को लज्जित करने लगा, चम्पाफूल में तीन गुण हैं रंग, रूप और सुगन्ध, पर उसमें एक अवगुण भी होता है, और वह यह है कि उसके पास भँवर नहीं बैठता.

दोहा—चम्पा तुझमें तीन गुण, रूप रंग अरु बास।
अवगुण तुझ में एक है, भँवर न बैठे पास॥

पर यह चम्पा उस दोष से रहित है, क्योंकि राज-

कुमार चन्द्रकान्त का भँवररूपी मन निरन्तर उसके मुख पर रमण किया करता है, और अपने रस से उस को रसिक बनाये रहता है. जब सहस्रों कोसों पर स्थित हुए एक चन्द्रमा को देख कर कोटिन स्त्री पुरुषों के दिल आनन्द से भर जाते हैं तो उससे कहीं बड़े चढ़े दो चन्द्रमा को अपने पास ही देख करके, राजा रानी कितने आनन्द को प्राप्त होरहे होंगे पाठकजन अनुभव करसकते हैं. सेनापतियों ने राजा और राजकुमार को खबर दी कि श्रावक राजा और उसके मुख्य मुख्य अफसरान और बन्धुवों को शृङ्खला बंध किये हुये ला रहे हैं. जब वे द्वार पर आगये, और सामने खड़े कर दिये गये तो उनकी दुर्दशा को देख कर और अपनी पिछली दशा से जब वह युद्ध में पकड़े गये थे मिलाकर शोक-वान् होते हुये दया की दृष्टि से देख कर राजा अपने पुत्र चन्द्रकान्त से कहता है कि हे पुत्र! जो कष्ट इनको इस समय होरहा है उसको मैं उठा चुका हूं, इनका कष्ट मुझसे देखा नहीं जाता है. राजकुमार उन सबको तुरन्त बन्धन से अबन्धन करके बड़े आदर सत्कारके साथ अपने पास बैठाल करके निम्न प्रकार कहने लगा. हे राजन्! "कलियुग नहीं करयुगहै" इस हाथ दे उस हाथ ले, जैसा करोगे वैसा पावोगे, आम्रवृक्ष का लगानेवाला

आम्रफल पाता है, और बबूलवृक्ष का लगानेवाला कांटा पाता है, शुभकर्मी स्वर्ग भोगता है, अशुभ-कर्मी नरक भोगता है, जो दुःख आपने मेरे पिता को दिया वह दुःख आपको उठामा पड़ा. जैसा जो करता है वैसा वह भोगता है, यह ईश्वर का अमित नियम है, एकही पिता से उत्पन्न हुये दो पुत्रों में से एक तो राज भोगता है, दूसरा कारागार में जाता है, यह कर्म की गति हटाने से हटती नहीं है, इसके हटाने में देवता, दानव, मनुष्य, किन्नर, गन्धर्व सभी हार मान गये हैं, आपने मेरे पिता से अकारण युद्ध करके उनका राज्य छीन लिया, और अतिकष्ट दिया, राज्य को बरबाद किया, प्रजा को दुःख दिया, और पिता को पुत्रसे अलग किया, यह सब मेरे पिताके कर्म में लिखा था इसलिये उनको भोगना पड़ा. हे श्रावक राजा ! जैनीधर्म जैनियों के लिये वैसा ही श्रेष्ठ है जैसा सनातनियों के लिये सनातन धर्म है जो धर्म एक का है वही दूसरे का भी है, जितने धर्म हैं वे सव सनातनी हैं, कोई नवीन नहीं हैं, जीव का हिंसा करना, असत्य बोलना, परस्त्री गमन करना, मदिरा पान करना, द्यूत खेलना, परधन अपहरण करना सबके धर्म में वर्जित माना गया है, सबका शुभ-चिंतक होना, सबको अन्न जल देना, मृदु सम्भाषण,

अभ्यागतों की सेवा करना, अंधे लंगड़े लूलों की यथाशक्ति सहायता करनी, सब धर्मों में श्रेष्ठ माना गया है, सब का ईश्वर एक है, वही वास्तव में सब का पिता है, इस ख्याल से जीवमात्र एक दूसरे के साथ भ्रातृसम्बन्ध रखते हैं, और उनका धर्म है कि एक दूसरे की ओर कृपादृष्टि से देखें, और उनका कल्याण करें, यदि सबका ईश्वर एक पिता तुल्य न होता, या एक होते हुये भी किसी से खुश होता, और किसी से नाखुश होता तो हर मतावलम्बी पुरुषों में स्वाभाविक धर्म न होता, जिस मत से नाखुश होता उसके स्त्री पुरुषों को अंधा लंगड़ा पंगुल कर देता, और जिससे खुश होता उसके अनुगामियों को सुन्दर धनवान्, पराक्रमी बना देता, पर ऐसा तो नहीं है. इसीसे सिद्ध होता है कि ईश्वर क अनुग्रह सबके ऊपर एकसा है, और सब अपने कर्मानुसार भोग करते हैं.

हे श्रावक राजा! जिसके पिता को आप अपना शत्रु बनाकर उनसे लड़े, और उनको कारागार में डालकर अतिकष्ट दिया, आज मैं उनका पुत्र आपको अपना मित्र बना कर, और आपकी केवल स्वतन्त्रता लेकर आपको छोड़ता हूं, और राज्य भी आपको वापिस देता हूं. यह सुनकर श्रावक राजा राजकुमार के चरणों

पर गिर पड़ा, यह कहते हुये कि हे राजकुमार ! मैं अज्ञान के वश होकर अनर्थ कर वैठा, मेरा उद्धार केवल आपही के द्वारा होगा, राजकुमार ने फिर समझाया यह कह कर कि पुरुष का बन्ध और मोक्ष उसके मन की वृत्ति के ऊपर है, जिसको दृढ़ विश्वास है कि मैं मुक्त हूं वह निस्सन्देह मुक्त है, और जिसको यह दृढ़ संकल्प है कि मैं वद्ध हूं, वह वद्ध ही है, यदि आप सदा अपनी वृत्ति को नेकी की तरफ़ रक्खेंगे तो आप स्वतः नेक वन जायेंगे, अच्छे बुरे वनने की शक्ति आपमें ही है, दूसरे के पुरुषार्थ से आप न अच्छे वन सकते हैं, और न बुरे वन सकते हैं, जैसे पृथ्वी विषे जिस प्रकार का वीज डाला जाता है उसी प्रकार का फल उसमें उत्पन्न होता है, वैसेही जैसी वृत्ति आपके मस्तकगत होगी उसीके अनुसार शुभ अथवा अशुभ कर्म की उत्पत्ति होगी, हे श्रावक राजा ! जैसे वाटिका में असंख्य सुन्दर फूल फूले रहते हैं, और वे स्वतः प्रसन्न रहते हैं, और अपने पास के आनेवालों को आनन्द से भरदेते हैं, वैसेही धार्मिक पुरुष भी संसाररूपी वाटिका में रहकर आप स्वयं हर्षित रहते हैं, और अपने पास आनेवालों को हर्षित करदेते हैं, जैसे पुष्पों का मस्तक आकाश की ओर होते हुये परमात्मा

को स्मरण करते रहते हैं, वैसेही धार्मिक पुरुषों का वृत्तिरूपी पुष्प निरंतर ऊपर की ओर आत्माकार बना रहता है. हे राजन् ! जब तुम अपनी वृत्ति को आत्माकार करते रहोगे तब तुम भी पुष्पवत् लोगों को प्यारे लगोगे. हे राजन् ! जब सूर्य भगवान् अपने दिये हुये जल को पृथ्वी में से अपने में अपनी किरणों द्वारा शोषण करलेते हैं, तब उन फूलों की तरफ़ से लोगों की चित्तवृत्ति हट जाती है, जिनकी तरफ़ वही वृत्ति लगातार चला करती थी जब वे जल करके प्रफुल्लित रहते थे. इसीप्रकार जबतक परमात्मा अपने सत् चित् आनन्दरूपी जलको जीवों के शरीरों विषे पहुँचाया करता रहता है, तबतक वे जीवितदशा में रहकर हरे भरे प्रसन्न रहते हैं, पर ज्योंही वह अपने जल को अपनें विषे शोषण कर लेता है त्योंही वही शरीर भयंकर होकर गिर पड़ता है, फिर न उसमें सुन्दरता है, न वीरता है, न लावण्यता है, न आकर्षणता है, न खाता है, न पीता है, न सुनता है, न सुनाता है, न जागता है, न सोता है, न हँसता है, न हँसाता है, न चलता है, न फिरता है, जहां गिरगया वहीं पड़ारहकर सड़ जाता है, इस दशा को और उस दशा को जब चैतन्यदेव शरीर में स्थित रहता है देखकर आप अनुभव करसकते हैं कि

चैतन्यदेव कितना शक्तिमान् है. जो कुछ यह अपूर्व रचना दिखाई देती है, सब उसीकी है, वही खाता है, वही पीता है, वही सोता है, वही जागता है, वही गाता है, वही बजाता है, वही खेलता है, वही कूदता है, वही स्त्रीरूप धारणकर पुरुष को मोहता है, वही पुरुषाकार होकर स्त्री के संग क्रीड़ा करता है, जो कुछ सुन्दर है, प्रिय है, रोचक है, लोभायमान है, शक्तिमान् है, सब उसी का है. जो कुछ दृश्यमान है, जो कुछ अदृश्यमान है, जो कुछ रागवान् है, या वैराग्यवान् है सब उसीका ही है, उसका महत्त्व अप्रमाण है, ऐसे परमात्मा को अपने अन्तःकरण में ध्यान करते हुये, अपने को उसका प्रतिनिधि समझते हुये, उसके नियत किये हुये कार्य को विधिपूर्वक करते रहना उचित है.

हे श्रावक राजा! यद्यपि परमात्मा सब में व्यापक है पर मनुष्य में, और मनुष्यों में भी नरेश में विशेषरूप से व्यापक है, क्योंकि उसमें उपाधि जो अन्तःकरण है, वह औरों की अपेक्षा अधिक शुद्ध है, और इसी कारण उसमें परमात्मा का प्रतिबिम्बभी अधिक प्रकाशमान है, देखो रेलका इंजन हज़ारों मन बोझ लिये हुये चलाजाता है, और हर एक स्टेशन पर ठहरता भी जाता है, पर ज्ञानशक्ति न होने के कारण मूकवत्

खड़ा रहता है, न किसी के दुःख को सुनता है, और न अपने दुःख को कहता है, क्योंकि वह जड़ है, मन बुद्धि से, जो दुःख सुख के भोगने के कारण हैं, रहित है. स्वतः न वह चल सकता है, न बुला सकता है, पर वही जड़ होता हुआ भी अद्भुत शक्तिवाला होजाता है, जब कोई चलानेवाला पुरुष उसपर सवार होकर अपनी निराकार शक्ति को उसके अन्दर डाल देता है. इसी प्रकार यावत् शरीर हैं, सब इंजन की तरह जड़ हैं, पर जब उसमें ब्रह्मकी विशेषशक्ति मन बुद्धि उपाधिजन्य उसमें पड़ती है, तब वह सब कुछ करने में समर्थ होता है, जब यह मनुष्यशरीर ऐसा बलवान् और उत्तम है तो जीव नरक में जाने के लिये क्यों पराक्रम करे, मोक्ष पाने के हेतु पुरुषार्थ क्यों न करे.

हे श्रावक राजा ! सब मतों का तात्पर्य दुःख की निवृत्ति, और सुखकी प्राप्ति में है. इसलिये जिस मत में, जिस सुगमरीति से आत्मसुख की प्राप्ति होती है, उसी को उस मतका माननेवाला सत्य मानता है, और दूसरे के मतको खंडन करता है. शब्दवादी कहता है कि शब्द सबमें व्याप्त है, इसीके आश्रय सबकी स्थिति है, यदि यह शब्द न होवे तो किसी की भी स्थिति न होवे, कौनसी जगह या वस्तु है जहां आकाश में शब्द

नहीं है चलना फिरना बोलना चालना शब्दका ही व्यवहार है, इसीके आश्रय सूर्य, चन्द्र, तारागण हैं. इस लिये अगर ईश्वर है तो शब्दही ईश्वर है, कालवादी कहता है कि कालही के सब आधीन है, काल पाकर आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी उत्पन्न होते हैं, और कालही पाकर उनमें जीव, जन्तु, वृक्ष, फल, फूलादि उत्पन्न होते हैं, और कालही पाकर वे सब नाश होजाते हैं, कालही पाकर पुरुष धनाढ्य से कंगाल हो जाता है, कालही पाकर कंगाल से धनाढ्य बनजाता है, कालही पाकर गुणी अवगुणी, और अवगुणी गुणी होजाता है, कालही पाकर दुःखी सुखी, और सुखी दुःखी बनजाता, है कालही पाकर अवतार होते हैं, और कालहीपाकर गुप्त होजाते हैं, कालही पाकर रंक से चक्रवर्ती राजा और चक्रवर्ती राजा से रंक होकर गली गली मारा फिरता है, काल व्यापक आत्मा एकरस है, इसीकी सत्ता लेकर संसार का सारा व्यवहार चलरहा है, कालही भगवान् है, कालही परमात्मा है, कालरूपी परमात्मा से सब सृष्टि की उत्पत्ति है, काल से पृथक् किसी की सत्ता नहीं है.

अक्षरवादी कहता है, कि अक्षर देखने में कम और निर्बल प्रतीत होता है, पर वास्तव में यह इतना व्यापक

और वली है कि करोड़ों ब्रह्माण्ड इसीके आश्रय हो रहे हैं, और सारा जगत् का कार्य इसीके आधीन है, ब्रह्मा, विष्णु और महेश से लेकर यावत् देवता और अवतारादिक हैं, और यावत् भोगसामग्री हैं, सब इसीके आश्रय हैं, जब अक्षर का संयम पदमें होता है तब यह अद्वितीय शक्ति दिखलाता है, किसी देशमें १६ अक्षर हैं, किसी में २६ हैं, किसी में ४६ हैं और किसी में ५६ हैं, और इन्हीं अक्षरोंकी उलटाफेरी से लाखों पद बनजाते हैं, और उनमें अर्थशक्ति अति विस्तृत होजाती है जिसका वारापार नहीं. यही ईश्वर और माया को, और उनके कार्यों को, सिद्ध करताहै, यही कुल व्यवहारिक और पारमार्थिक कार्यों को भी सिद्ध करता है. इससे पृथक् ईश्वर की सत्ता नहीं, हे श्रावक राजा! जो कुछ ऊपर कहागया है वह सब नामप्रति कहा गया है इससे श्रेष्ठ दूसरी वस्तु है उनको मैं क्रमसे कहताहूं सुनो, वाणी नाम से बढ़कर है, क्योंकि वाणी ही करके वेदों और शास्त्रों को पुरुष पढ़ता है, वाणी ही करके जीव, जन्तु, कीट, पतंग, धर्म, अधर्म, सत्, असत्, साधु, असाधु, प्रिय, अप्रिय को जानता और समझता है, हे श्रावक राजा! वाणी से मन बढ़कर है, क्योंकि सारा व्यवहार संसार का मनही करके होता है, मनही

करके जीव मुक्त है, और मनही करके बन्ध है, मनही करके स्वर्ग को जाता है, मनही करके नरक को जाता है, मनही करके कर्म करता है, मनही करके पुत्र, पौत्र, कलत्र, धनादिकों को प्राप्त होता है, मनही लोक है, मनही परलोक है, जो कुछ दीखने और सुनने में आता है सब मनही के आश्रय है.

हे जैन राजा! संकल्प मनसे श्रेष्ठ है क्योंकि पहिले पुरुष संकल्प करता है, फिर मनन करता है, तिसके पीछे वाणी का उच्चारण करता है, संकल्प से चित्त बढ़कर है, क्योंकि विना चिन्तन करने के कोई संकल्प नहीं करसकता है, पहिले चिन्तन करता है फिर संकल्प करता है, फिर मनन करता है, हे राजन्! चित्त से ध्यान श्रेष्ठ है, क्योंकि विना ध्यान किये हुये चित्त की एकाग्रता होती नहीं. ध्यान की महिमा अतुल है, इसी करके आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सब पर्वत, देवता, मनुष्यादि ऐसे बड़े महत्त्व को प्राप्त हुये हैं. जिन पुरुषों में ध्यान की एकसी कला है, वे बड़ी प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं, और जिनमें ध्यान नहीं है वे दुष्ट लड़ाके कहलाते हैं, ध्यान से विज्ञान बढ़कर है, क्योंकि विज्ञान करके ही वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास का करण और अनेक प्रकार की विद्या जानी जाती हैं, इसी करके

पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, मनुष्य, पशु पक्षी, वनस्पति, जीव, जन्तु, कीड़े, मकोड़े, देव, गंधर्व किन्नर, यक्ष, राक्षस, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, साधु असाधु, प्रिय, अप्रिय, अन्न, रस इस लोक और परलोक को जानता है.

हे श्रावक राजा! विज्ञान से बल श्रेष्ठ है क्योंकि एक बलवान् सौ विज्ञानियों को कँपा देता है, और बलकरके ही शिष्य आचार्य की सेवा करने योग्य होता है, और सेवा करके गुरु को प्रसन्न करता है, और गुरुको प्रिय लगता है, और फिर एकाग्रचित्त होकर गुरु की तरफ़ देखता है, और गुरु के उपदेश को सुनता है, फिर मनन करता है, समझता है, और अनुष्ठान को करता है, और फिर विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है, पृथ्वी, देवलोक, अन्तरिक्षलोक, पर्वत, देवता, मनुष्य, लोक, परलोक और उनके अन्दर सब प्राणी बलकरके ही स्थित हैं.

हे राजन्! बलसे अन्न श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्न करके ही बल होता है, अगर कोई दश रात्रि तक भोजन न करे तो बोलने सुनने और मनन कर्म करने में असमर्थ होजाता है, अन्न से जल श्रेष्ठ है क्योंकि बिना जलके जीवमात्र जीवित नहीं रह सकता है, जब अच्छी वर्षा होती है तब अनुमान करके कि अन्न बहुत होगा

सब प्राणी आनन्दित होते हैं और जब अच्छी वर्षा नहीं होती है तब यह सोचकर कि अन्न बहुत कम होगा सब प्राणी दुःखित होते हैं. इसलिये सब लोक जीव जन्तु बनस्पत्यादि सब जलके ही आश्रय हैं.

हे जैन राजा ! जल से अग्नि श्रेष्ठ है, क्योंकि जब आकाश अग्नि करके संतप्त होता है तब वर्षा होती है, और तभी जीव जन्तु सब तृप्त होते हैं, आकाश अग्नि से बढ़ करके है, क्योंकि आकाश में सूर्य, चन्द्रमा, बिजुली, तारागण और अग्नि रहते हैं. आकाश करके मनुष्य एक दूसरे को बुलाता है, आकाश करके ही एक दूसरे की सुनता है, जवाब देता है, आकाश करकें ही सबकी उत्पत्ति और नाश है, आकाश से स्मरणशक्ति बढ़कर है, क्योंकि बिना स्मरण के न कोई सुन सकता है, न बोल सकता है, और न मनन कर सकता है, न समझ सकता है, इसी शक्ति करके पुरुष सब पदार्थों को समझ सकता है.

हे राजन् ! स्मरण से आशा श्रेष्ठ है, क्योंकि आशा करके जगा हुआ पुरुष स्मृतियुक्त होता है, तत्पश्चात् मंत्रों का ध्यान करता है, पुत्रों और पशुवों के पाने की इच्छा करता है, और फिर लोक और परलोक के पाने की इच्छा करता है, आशा से प्राण बढ़कर है, जैसे

रथचक्र में नाभि होती है और उसमें आरे और नेमी लगे रहते हैं, और उनके द्वारा रथचक्र अपना व्यवहार करता है, और नाभि के गिर जाने से सारा व्यवहार बन्द होजाता है, उसी तरह प्राण नाभि के तुल्य है, और इन्द्रियां आरे के तुल्य हैं, शरीर रथ के तुल्य है, जब प्राण शरीर से निकल जाता है, तब इन्द्रियां और शरीर नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं, अतएव सब प्राणही के आश्रय हैं, प्राण स्वतंत्र हैं, इन्द्रिया परतंत्र हैं, प्राणीमात्र में जो क्रिया होती है वह प्राण करकेही होती है, प्राण ही पिता है, प्राणही माता है, प्राणही भ्राता है, प्राणही स्वसा है, प्राणही आचार्य है, प्राणही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र है, जो कुछ संसार में है, सब प्राणही के आश्रय है. जब शरीर से प्राण चल देता है तब मृतक शरीरको न कोई पिता, न माता, न भगिनी, न आचार्य, न ब्राह्मणादिक नामों करके कहता है. प्राण करके ही दुःख होता है, प्राण करके ही सुख होता है, जब शरीर से प्राण निकल जाता है तो शरीर का दाहकर्म करते वक्त न दुःख होता है, और न सुख होता है.

हे श्रावक राजा! नाम से लेकर आशा पर्यन्त एक दूसरे के उत्तरोत्तर अधिक बढ़कर जानता हुआ, प्राण के माहात्म्य को भली प्रकार जानना चाहिये, प्राणों के

माहात्म्य से सब का माहात्म्य नीचा है, हे राजन्! ऐसा जो प्राण है वह सत्य के आश्रय है, विना सत्य के जाने हुये किसी का कल्याण नहीं होसकता है, यह सुनकर श्रावक राजा कहता है कि हे राजकुमार! आपका उपदेश मुझको अतिप्रिय लगता है आप मुझको सत्यका उपदेश करें. हे राजन्! सत्यको वही कह सकता है जो सत्यको जानता है, जैसे मैंने ब्रह्मऋषि और राजऋषि से सुना और जाना है उसको मैं आपके लिये कहता हूं, आप सुनें.

सत्य वस्तु विज्ञानद्वारा जानी जाती है, जैसे नाम रूपात्मक घटरूप उपाधि का सत्य एक मृत्तिका ही है, और जो सत्यरूप मृत्तिका से बने हुये घट शरावादिक हैं, वे केवल वाचारम्भणमात्रही हैं, और सत्यरूप मृत्तिका से यदि उनको अलग करके देखो तो उनका कहीं पता नहीं है, और जैसे सूतको निकाल कर कपड़े को कोई दिखाना चाहे तो कपड़े का कहीं पता नहीं है, क्या दिखा सकता है, तैसे ही अधिष्ठान चैतन्य से पृथक् कुछ भी नहीं है, हे राजन्! जो प्राण को सत्य कहा है, वह नाम आदिकों की अपेक्षा करके सत्य कहा है, क्योंकि प्राण भी और विकारों की तरह उत्पत्ति और नाशवान् है, यह घटता है, बढ़ता है, चलता है और

निकल जाता है, पर जो इसका अधिष्ठान है, जिसकी सत्ता लेकर यह अनेक प्रकार के व्यवहारों को करता है वही सत्य है, सोई जानने योग्य है, वही उपनिषदों द्वारा अनुभव किया जाता है, जो उपनिषदों के विचार से यथार्थ ज्ञान होता है वही विज्ञान कहलाता है, वही तुम्हारे जानने योग्य है, हे राजन् ! जब जिज्ञासु मनन करता है, तब विज्ञान को प्राप्त होता है, विना मनन किये हुये विज्ञान को प्राप्त नहीं होता है, पहिले जिज्ञासु आचार्य से सुनता है फिर एकान्त विषे विचार करके तर्क करके और युक्तियों से दृढ़ करके मनन करता है. यह मननशक्ति तब प्राप्त होती है जब गुरु के वाक्य में श्रद्धा होती है, और श्रद्धा तभी होती है जब गुरु में निष्ठा होती है, और निष्ठा तब होती है जब जिज्ञासु इन्द्रियों के विषयों को रोकता है, और चित्त को एकाग्र करता है, जिसको कृति कहते हैं, और यह कृति तब होती है जब जिज्ञासु को पारमार्थिक अखण्ड सुख होता है.

हे राजन् ! जो अपना आत्मा है, वही सुखरूप है, निरतिशय सुख परिपूर्णता में होताहै, अल्पज्ञता में नहीं जो आत्मा है वही ब्रह्म है, वही भूमा है, भूमा का अर्थ अतिमहान् के है, जिससे बड़ा और कोई न होवे

और जिसमें सब समाजावे वही भूमा है, वही तुम्हारा और हमारा आत्मा है, यही इस स्थूल और सूक्ष्म शरीर में स्थित है, वही सब जगह व्यापक है, हे राजन् ! उस एक अद्वैत निर्विशेष आत्मतत्त्व विषे उपासक न अन्य वस्तु को देखता है, न सुनता है, न अन्य वस्तु को जानता है, और जिसमें उपासक अन्य वस्तु को देखता है, अन्य वस्तु को सुनता है, और अन्य वस्तु को जानता है, वह अल्प है, भूमा नहीं है, जो अल्प है वही मरने योग्य है, हे राजन् ! भूमा अपने निज महिमा में प्रतिष्ठित है, वही चैतन्य आनन्दस्वरूप सत्य है, ऐसा तुम्हारा स्वरूप है, जब ऐसा तुम्हारा स्वरूप है, तो कौन तुम्हारा शत्रु है, और कौन तुम्हारा मित्र है, तुम अजय अविनाशी हो, इसलिये न तुम्हारा कोई शत्रु है, न मित्र है, तुम अपनी महिमा को स्वप्नावस्था में स्वतः देख सकते हो, क्यों क्या तुम्हारे में असंख्य लोक, असंख्य जीव, असंख्य वृक्ष, पहाड़, नदी, नाले, तालाब, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रादि नहीं भासते हैं, तुम्हारा विस्तार कितना है जिसमें ये इतने बड़े होने पर भी समाये हुये अणु प्रमाण के तुल्य दिखाई देते हैं, राजा को अपनी महिमा का ज्ञान होगया, और बड़ी नम्रतापूर्वक दण्डवत् करके और हाथ जोड़ कर कहने लगा.

श्रावक राजा—हे राजकुमार ! मुझको सनातनधर्म के महत्त्व का हाल पहिले नहीं मालूम था, नहीं तो मैं आपके पिता से कभी युद्ध न करता, और न उनके दुःख का कारण बनता, मैं बड़ा अधर्म करके पातकी बना, पर आज आपके उपदेश करके इस भवसागर को अजाखुरवत् उल्लंघन कर गया हूं, और अपने वास्तविकरूप को प्राप्त भया हूं, और जैनधर्म को त्याग कर सनातनधर्म स्वीकार करना चाहता हूं, आप मुझ को अपना शिष्य बनाकर इस अद्वितीय प्रकाशक मत को स्वीकार करने की आज्ञा दीजिये, यह सुनकर राजकुमार कहते हैं.

राजकुमार—हे राजन् ! जिस मत में आप उत्पन्न हुये हो वही मत आपके लिये श्रेष्ठ है, उसीद्वारा आपकी मुक्ति है, आप जैनमत को कभी न त्यागिये, इसके असली तात्पर्य को समझिये, और जो २४ तीर्थङ्कर यानी अवतार होगये हैं, उन्हीं के उपदेशानुसार चलिये, उन्हीं से आप का कल्याण होगा, अब आप राजभवन को जाइये, और राज्य करिये, और प्रजा को सुख दीजिये, जैन राजा ने कहा कि आपने मुझको अखण्ड राज्य दिया है, उस राज्य की अपेक्षा यह राज्य अतितुच्छ है, सिंह होकर शृगाल होने की कैसे कोई

इच्छा करेगा, मैं अपने महत्त्व को प्राप्त होगया हूं, मैं स्वतंत्र हूं, अविनाशी हूं, व्यापक हूं, अपने में आनन्दित हूं, पूर्ण हूं, इच्छा न्यूनता में होती है, पूर्णता में नहीं, यदि आपकी और आप के पिता की इच्छा है कि मैं फिर इस हरी हुई गद्दी को स्वीकार करूं तो यह बात तभी हो सकती है जब आपके पिता इस राज्यगद्दी पर सुशोभित होकर अपनी तरफ़ से प्रसादवत् देवें, नहीं तो मैं इसको कदापि अंगीकार नहीं करूंगा, यह बात सबको पसन्द आई.

राज्याभिषेक की तैयारियां होने लगीं, जैनमतवाले अपने धर्मानुसार और सनातनीय अपने मतानुसार यथोचित सामग्री एकत्र करने लगे, जो सूचित करता है कि आज ब्रह्मदेव के उत्साह में शिव और विष्णु के मतावलम्बी बड़े हर्ष के साथ इच्छापूर्वक भाग लेने को उद्यत होरहे हैं, दोनों मतों के लोगों की टोलियां ऐसे प्रेम के साथ मिलती हैं जैसे गंगा यमुना की धारें प्रयागराज में मुदित होती हुई मिली चली जाती हैं, जो गर्द गुबार दोनों तरफ़ के लोगोंके अन्तःकरण में काम, क्रोध, मोह, लोभ के कारण जम गया था, वह अब एक दूसरे के शुभचिन्तक वृत्तिरूपी जल ने अमृत की धार में वर्ष करके दूर कर दिया, और उसके अन्तर जो शुभ

कामनाओं के छोटे छोटे हरे पौधे इस राज्याभिषेक के निमित्त जमगये, उनके पुष्प का प्रकाश आनन्द के मारे उनके मुखों पर प्रकाशित होआया; स्त्री, पुरुष, लड़की, लड़के, सब के सब अपने अपने गृह सँवारने में तत्पर हो रहे हैं, और सबकी यही इच्छा है कि हमारी रचना दूसरे से चढ़कर दिखाई देवे, यह नगर नहीं है बल्कि एक तड़ाग है, जिसमें मनुष्यरूपी अनेक प्रकार के कमलों का वन लग रहा है, और जिसमें स्त्रियां कुमुदिनी की सूरत में खिल रहीं हैं, और उनके दिलों का उमंग समुद्र की वीचिवत् आनन्द के मारे पूर्ण चन्द्रमारूपी राज्याभिषेक को देखकर ऊपर को उठता आता है, सब का शरीर पुलकित होरहा है, और मन प्रसन्न होकर मंगल के साज को साजता है और उसमें उनका चित्त ऐसा गड़गया है कि वे अपने को भूल गये हैं, और उन समूहों में जो चन्द्रमुखी कोकिलबैनी और मृगनयनी हैं वे मंगलाचार के गीत मधुर स्वर से गारही हैं, नगर में भांति भांति के बाजे बजते हैं, और सड़कों पर मकानों के सामने नूतन आम्रपत्र, और बेलपत्र के मनोहरणीय सुन्दर वन्दनवार लगे हैं, हाट, बाट, गली, कूचों में कदली के खम्भे गड़े हैं, तिन के कमर से तीन तीन रेशमी डोरे लगे हैं, जिसमें रसालपत्र, बेलपत्र,

जपापुष्पादिकों के फूल बँधे हुये ऐसे प्रिय लगते हैं; जैसे त्रिगुणात्मक सृष्टि विद्वानोंकी दृष्टिमें प्रिय लगती है.

सनातनियों के मान्दिर में नीले, पीले, हरे, श्वेत, लाल रंग के झाड़, फानूस, कवलादि रक्खे हैं, रंग विरंग के अन्तरा (परदे) पड़े हैं, मूर्तियां आभूषणों से आभूषित हैं, पुजारी समय समय पर पूजा करते हैं, यज्ञादि कर्म विधिपूर्वक यज्ञशाला में हो रहा है, अनाथों को सनातनी द्रव्यों से सनाथ किये देते हैं.

जैनमान्दिरों में जाइये तो वहां की शान्ति, सरलता, शुद्धता, और सुंदरता अपूर्व महिमा दिखा रही है, मूर्तियां प्रसन्न चित्त होती हुई बोलने पर हैं, उनके सामने सुगन्धित सुवर्णीय फूल रक्खे हैं, और स्त्री पुरुष आनन्दपूर्वक पूजन राज्याभिषेक की निर्विघ्न समाप्त्यर्थ कर रहे हैं, गलियों में अनेक जगहों पर पुण्यदान हो रहा है, नगर के बाहर बागों में अनेक मतावलम्बी साधुओं की जमाअत पड़ी है, और उनके भोजनार्थ पूरी सामग्री एकत्र है, इधर उधर कथा वार्ता भी होरही हैं, सैनिक वासस्थान के तरफ जाइये तो फौजी सामान बड़े उत्साह के साथ होरहा है, कहीं तलवार साफ होरही है, कहीं तीर कमान पर हाथ फेरा जारहा है, कहीं तोपों पर रंग होरहा है, कहीं भालों में नये पताके लगरहे हैं,

कहीं घोड़े हाथी सजे जारहे हैं, कहीं संग्रामी पोशाकें बनरही हैं, हर तरफ़ धूमधाम मची है, अपने अपने काम में सब लगे हैं, कोई किसी की सुनता नहीं है.

सायंकालका समय आगया, कृष्णपक्ष अष्टमीरविवार का दिन है, ऊपर तारेगण का प्रकाश है, नीचे नगर भर में दीपमालिका का प्रकाश है, मकानों के अन्दर की बनावट, और बहुरंगी कांचिक वस्तुओं की सजावट, एक अद्वितीय दृश्य दर्शा रही है, मणियों की दमक, मोतियोंकी चमक, मूर्तियोंकी झलक दर्शकों की दृष्टि को चौंधियाती है, राजमहल का क्या कहना है, आज वहां आनन्द की वर्षा होरही है, जिसको देखकर इन्द्रलोक भी ईर्षा से भर गया है, लोगों के अन्तःकरण में प्रश्न उठता है, कि ऐसी खुशी पराजित प्रजा वैदेशिक राजा के राज्याभिषेक में क्योंकर होरही है, उत्तर यही मिलता है, कि प्रजा उसीको अपना राजा समझती है जो उसका पालन करता है, और उसका प्रेम उसकी तरफ़ पुत्रवत् होता है, जो सलूक आज विजयी राजाने पराजित राजा के साथ किया है, उसने सब प्रजा के दिलों को खींच लिया है, और आनन्द से भर दिया है, उस आनन्द के कारण सब प्रजा वैदेशिक राजा के ऊपर अनुरागबद्ध होरही है, और उसके कल्याणार्थ

ईश्वर से प्रार्थना करती है कोई मंदिर में, और कोई अपने हृदय में जैसे जिसकी रुचि है उसके अनुसार.

दश बजे रात्रि को शुभ लग्न में राजतिलक होना नियत है, उसके आने की इच्छा सबको होरही है, सबके कान ऊंचे होरहे हैं, इतने में एकाएक सलामी होने लगी, राज्याभिषेक की समाप्ति हुई, चारों ओर हल चल मच गया, दान पुण्य होने लगा, शंखोंकी ध्वनि, बाजों की गूंज आकाशतक छागई, एक दूसरेके साथ मित्रभाव के साथ मिलता है, जैनी और सनातनी ऐसे मिल गये हैं जैसे दूध और पानी, उनकी पहिले की शत्रुता मित्रता में बदल गई, काल ने अपना रंग बदल दिया, एक वह दिन था कि येही राजा रानी बँधे हुये आये, और कारागार में छोड़ दिये गये, और एक दिन आज है कि कुल प्रजा उनकी जय मना रही है, जिधर देखो उधर उनका नाम यश के साथ लेरही है, और उनके तरफ पितृवत् दृष्टि से देखरही है, हे काल भगवन्! तेरी लीला अपरम्पार है, तू दमभर में रंक को कुबेर, और कुबेर को रंक बना देता है; मनुष्यमात्र को चाहिये कि धैर्य को न त्यागे, और न ईश्वर को भूले, वह पलक भर में इधर को उधर कर देता है, इस प्रकार का उलट पलट लगा रहता है, जहां आज समुद्र है वहां

कल देश था, जहां कल समुद्र था यहां आज देश है.

राज्याभिषेक संस्कार के समाप्ति के पश्चात् जैन-राजा ने अपने राजमंत्रियों और सेनापतियों के साथ मधुरवाणी से स्तुति करते हुये राजा रानी के कम्बुग्रीवा को विजय की माला से सुशोभित किया, और वाद को सवों ने हस्तयुगल से पुष्पवृष्टि इतनी की कि मानो भाद्रपद मास के मेघ नक्षत्र ने आज आनन्द की झरी लगादी, और सारी प्रजा अन्न के वाहुल्यता की आशा में संसारविषे आनेवाली संपत्ति को अनुभव कर बड़ी हर्षित होती भई, जैनराजा ने वड़े प्रेम के साथ सनातन-धर्मी राजा की पराधीनता स्वीकार करके राजभेंट अर्पण किया, और एक पहर व्यतीत होने पर सनातनधर्मी राजा ने जैनराजा को गद्दीपर वैठाल कर उनका राज्य उनको वापस कर दिया, और प्रजा के मनोगत कामना को पूर्ण किया, रातभर गाना वजाना मेल मिलाप होता रहा, और इसी प्रकार उत्सव सारे राजभर में एक पक्ष तक होता रहा, प्रकृति महारानी अपना वहुरंगी कार्य पल पल में दिखलाया करती हैं, कभी कुछ कभी कुछ, किसी की स्थिति एक रंग पर नहीं रहने पाती है, जो आज आता है, वह कल जाता भी है; एक तरफ से उत्पत्ति होती जाती है, दूसरी तरफ से लय होताजाता है,

यही माया का हेर फेर लगा है, और सदा लगा रहेगा, इस विचित्र लीलाका जाननेवाला सिवाय ईश्वर के दूसरा कोई नहीं है, कारण यह है कि माया ईश्वर के आधीन है, जैसे ईश्वर की इच्छा को देखती है वैसे ही वह कार्य करने लगती है, और ईश्वर उसके अद्भुत चरित्रों को देखकर प्रसन्न होता है, पर जीव माया के आधीन है, यह उसके जालमें फँसकर वेवश होता हुआ अनेक प्रकार के दुःखों को उठाता है, और उसके अकथनीय सत् असत् से विलक्षण मनःशिलावत् उसके कार्य को सुंदर देखकर अपने और उसके यथार्थ स्वरूप को न जान कर भटकने लगता है, जिससे उसको अत्यन्त पश्चात्ताप होता है, और वह इसी लोक में रहकर रौरव नरक की ताड़ना को सहता है, पर यदि उससे अपने को पृथक् समुझ कर उसके आश्चर्ययुक्त अलौकिक कर्मों का द्रष्टा बनै तो वह भी ईश्वरवत् अभय, अशोक, अजर, अमर, प्रसन्नचित्त होता हुआ अपने महत्त्व में सुखी बनारहे, पर यह तबही होसक्ता है जब प्रभु का अतिअनुग्रह उस जीव के ऊपर होता है, देखो जो राजा नौ दश वर्ष पहिले अपने कर्मानुसार दुःखी बनाथा वही आज शुभकर्म के उदय होतेही मान प्रतिष्ठावाला महाप्रतापी तेजवान् समुझा जाने-

लगा, ऐसी विचित्रगति प्रभुकी सदा रहा करती है, कभी रंक को कुवेर और कभी कुवेर को रंक वनाया करता है, और आप उसके सुख दुःख से अलग रहकर अपने सच्चिदानंद रूपमें स्थित रहता है.

एक दिन राजा एकांत विपे वड़े हर्ष में वैठे हुये अपनी राजधानी की तरफ़ जाने का विचार कर रहे थे कि इतने में एक सेवक आनकर जयजीव कहकर और हाथ जोड़कर वोला कि हे प्रभो! जैनी राजा आपके दर्शनार्थ आये हैं; उनके स्वागत होने की आज्ञा दीगई. जैनी राजा भीतर आये, और वाद सत्कार यथोचित के शुभासीन हुये, और प्रसन्नतापूर्वक कहनेलगे.

जैन राजा—हे प्रभो! मेरे संवन्धी, राजमन्त्री, और सेनापति इच्छा करते हैं कि राजकुमार, और राजकुमारी का पाणिग्रहणोत्सव इस राजभवन में होवे, ऐसा होने में मेरी प्रतिष्ठा, और आपकी कीर्ति वढ़ेगी, प्रजा सुखी होगी, राजाने कहा हे मित्र! इसका उत्तर राजकुमार के मुख से होना उचित है, राजकुमार बुलाये गये, और वह आज्ञा पाकर सभाभूषण हुये, और प्रश्न के उत्तर निम्न प्रकार दिये.

राजकुमार—हे श्रावक राजा! हर स्थान हर विषय के लिये योग्य नहीं होता है, कोई स्थान यज्ञ के लिये,

कोई रणके लिये, कोई तपके लिये, कोई दान के लिये, कोई परमार्थ के लिये, और कोई व्यवहार के लिये योग्य होता है, जो स्थान जिस कर्म के लिये स्वभाव से नियत है उसमें उसी कर्म के करने से श्रेष्ठफल मिलता है, यह राजधानी थोड़ेही काल पहिले रणक्षेत्र होचुकी है, जिस क्षेत्रविषे रक्त की नदी वहचुकी है, शूरवीरोंका मांस गृध्रों, शृगालों और श्वानोंका आहार बनचुका है, सहस्रों माता पिता बेपुत्र, और सहस्रों स्त्रियां बेपति के हो चुकी हैं, वह ब्राह्मयज्ञ (विवाह) के योग्य कैसे होसक्ती है, यह ब्राह्मयज्ञ साधारण यज्ञ नहीं है, इसी यज्ञद्वारा, ब्रह्मचर्यसाधन को पूर्ण करके, पांचवीं अग्निरूपी अपनी स्त्री में आहुति देकर उसके दृष्टफल पुत्र करके अदृष्टफल स्वर्ग को पुरुष प्राप्त होता है, और फिर श्रेष्ठ कुल विषे जन्म लेकर और श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के उपदेश करके और अपने पुरुषार्थ करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर आवागमन से रहित होजाता है. हे श्रावक राजा! जब मैं केवल सात वर्षका था मुझको माता पिता से पृथक् होना पड़ा, और दैवकी प्रेरणा करके राजसुख से विमुख कियागया, और अरण्यवास बहुत काल के लिये प्रारब्धानुसार भोगना पड़ा. वहांपर हरी कोमल घास मेरेलिये हरी मखमली शयन शय्या बनी, वृक्ष-

रंगी पुष्प मेरे लिये रुपहले सुनहले मोतीजटित आभू-
षण हुये, वनके देवी देवताओं ने मेरे माता पिता बनकर
मेरी रक्षा की, बेल, लता, चँवर, छोटे बड़े पौधे और
वृक्ष मेरे सखा हुये, और हृदयकमल की कली के
खिलानेवाली उनकी हरी प्यारी पत्तियां और कोमल
कोमल कोपलें और नन्ही नन्ही टहनियां फल फूल से
लदीहुई मेरे चित्त को अपनी तरफ़ ऐसे आकर्षण
करती थीं कि जब वे वायुके वेग से अपने शिर को
हिलाती थीं तो मुझको यह समुझ पड़ता था कि वे
मुझको प्यार करने के लिये बुलारही हैं, और मैं दौड़
कर उनके पास पहुँचजाता, और वे अपनी सुगन्धित
छायामें मन्द वायु के स्पर्श से ऐसी आनन्द देतीं कि मैं
सब क्लेशों को भूलजाता, और मेरी सब इन्द्रियां तरो-
ताज़ी होजातीं, और मैं अपनेको बड़ा बली पानेलगता,
जब खेलते खेलते थकजाता तो दौड़कर समीपस्थ शुद्ध
निर्मल नदी में कूदपड़ता, और उसमें डुबकी मारतेही
वह सुख मुझको प्रतीत होने लगता जो बालक को
माता के करकमल करके उपटन लगाने से होता है,
और जब मैं उस नदीको स्नान करने के पश्चात् अपनी
प्यारी माता समुझकर अनुभव करने लगता तो वह भी
स्नेहसे युक्त मेरे दृष्टिगोचर होने लगती, और जब दण्ड

प्रणाम करके उसके किनारे से चलने लगता तो उसके वक्षस्थलका जल इतना ऊपर को उछलता कि मानो वह माता मेरे वियोग को न सहकर शोकके साथ सांस लेती है, और उसको ऐसा देखकर मेरा भी शरीर रोमाञ्चित होजाता, और जब मैं बड़ी नम्रताके साथ स्तुति करके यह कहता कि हे माता ! कल फिर मैं तेरे शरण आऊंगा, और तेरे आनन्द देनेवाले जल में स्नान करूंगा, तब फिर जल शान्त होकर बहने लगता.

हे श्रावक राजा ! जब मैं किसी सुखदायी पेड़ के नीचे सघन छाया में बैठजाता तो मोर मोरनी बड़े आन-बान अहंकार युक्त मेरे सामने आनकर नृत्य करते, और उनके नृत्य से मैं बड़ा हर्षित होता, जहां कहीं खेलता मेरे आसपास अनेक रंग के पक्षी आते, और मेरे हाथसे फेंके हुये दानों को चुगते, और शिर उठा उठाकर मेरे मुखको देखकर आनन्द के मारे सुरीले शब्द करते, जिसको सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न होजाता, जब कभी किसी नदी के किनारे अन्न लेकर मैं बैठ जाता, तो हज़ारों रंग बिरंगकी सुन्दर मछलियां खुशी से भरीहुई चींचीं शब्द करती हुई दौड़आतीं, और बड़े आह्लाद से मेरे फेंके हुये दानों को निडर होकर खातीं, और कलोल करतीं, उनको आनन्दित देखकर मैं

भी आनन्द को प्राप्त होता, जब दो पहर को किसी घने वनमें खड़ा होकर अपनी मुरली को टेरता तो उसके शब्द सुनतेही सहस्रों गायें बछरे और बैल जो बलमें सिंहसे कहीं बढ़े चढ़े होते कूदते फांदते हुंकार शब्द करते हुये मेरे चारों तरफ़ खड़े होजाते, मानो वे मेरी प्राणरक्षा के लिये उद्यत रहे हैं, जब कभी मैं प्रातः व सायंकाल कुटी से बाहर निकल जाता तो ऋषियों की कुटी में से यज्ञकृत सुगन्धित धूम मेरे शरीर से स्पर्श करके मेरे चित्तको प्रसन्न करता, और वैदिक मंत्रों का सुहावना शब्द श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा पहुँचकर मेरे हृदय कमल को खिला देता, और उन ऋषि और ऋषि-पत्नियों का दर्शन मेरे तापत्रयको कुछ काल के लिये दूर करदेता, वर्षाकाल में जब सूर्य भगवान् अधोलोक को पधारने लगते तो उनके सप्तज्योतिमय किरणों की प्रतिमा जो छिटके विटके बादलोंपर पड़ती उससे उन मेघों के ऊपर एक अलौकिक अकथनीय दृश्य दिखाई देने लगता, कभी तो मालूम होता कि सुवर्ण की नदी पृथ्वीपर मेघों के नीचे बह रही है, और उसमें अनेक नौकायें काली काली चल रही हैं, कभी मालूम होता कि पृथ्वीपर अनेक जंगल लगे हैं, और उनके बीच बीच में सुवर्ण के अगणित सरोवर लहरा रहे हैं,

कभी मालूम होता कि अनेक दुर्ग काले वनके बीच में खड़े हैं, और उसके आसपास अनेक ताल सुवर्णजलमय होरहे हैं, और नीचे ऊपर छोटे बड़े वृक्ष लगे हैं, कभी उन मेघों में सिंह, गौ, घड़ियाल, अश्व, हरिण, हरिणी, मंदिर, सड़कादिकें भासने लगते, कभी मालूम होता कि आधी नदी सोनेकी पृथ्वीपर बहरही है, और आधी नदी रजत की बहरही है, और एक तरफ़ उसके सुवर्णजल, और दूसरी तरफ़ उसके रजत जलकी लहरें चमचम कर रही हैं, ऐसे अपूर्व दृश्य का मजा राजधानी में कहां, कभी कभी मेघ ऐसा दीखता था कि मानो चारों तरफ़ हिमालय पहाड़ आकाश को छूता हुआ खड़ा है, और उसकी चोटियों पर सफ़ेद सफ़ेद वर्फ़ जमी है, और ऊपर नीचे वृक्षोंका समुदाय चलागया है, उनकी तरफ़ से ठंढी वायु जब काले धौले बादलोंके छत्र के नीचे से आनकर शरीर से स्पर्श करता था तो अनिर्वचनीय आनंद मिलता था, ऐसा पवित्र सुहावना आश्चर्ययुक्त सुखदायी स्थान मेरे और राजकुमारी के ब्राह्मयज्ञ उत्सव के योग्य है, राजकुमार के मुखकमल से निकली हुई ललितवाणी ने सभासीनों को वश में करलिया, सबके सब अपने को भूले अवाक्य होते हुये राजकुमार के मुखचंद्र को टकटकी बांधे देखरहे हैं,

और उनके अमृतमय व्याख्यानरूपी जलको श्रोत्रे-न्द्रिय द्वारा पान कर रहे हैं, जब ऐसे जलका प्रवाह बंद हुआ, तब एकादशेन्द्रियां (यानी पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय और एकमन) अपना अपना व्यवहार करनेलगीं, और अकस्मात् सब लोग बोल उठे कि ऐसाही होना ठीक है, राजा के अन्तःकरण में ऋषि-दर्शनकी अभिलाषा उठी, अरण्य का रूप जिसको राजकुमार ने अपनी वक्तृत्व शक्ति से खींचकर सबके सामने चित्र के आकार में दिखाया था सबके नेत्रों के सामने स्थित होगया, लोगों के दिलों में शीघ्र चलने की इच्छा तीव्र हुई, तैयारियां होनेलगीं, चतुराङ्गिणी सेना, जो राजकुमारी के सामने खड़ी थी, हाथ नीचे करतेही लुप्त होगई, इसको देखकर श्रावक राजा बड़ा चकित हुआ, और हाथ जोड़कर राजकुमारी से पूछा, हे देवि! यह क्या बात है, मेरे समुझ में नहीं आता है, राजकु-मारी ने मुसकराकर कहा, हे राजन्! मंत्र में, और ऋषि-वाक्य में बड़ी शक्ति होती है, इनकेही आधीन सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश देवता रहते हैं, इन्हीं के आश्रय सारा जगत् है, इसमें आप आश्चर्य न करें, यह सुनकर जैनी राजा अपने मनमें कहने लगा कि इस राजकुमारसे शुद्ध हृदय के साथ मित्रता करना

उचित है, ऐसा सोचकर बड़े प्रेमके साथ सबसे मिल-
कर विदा होकर अपने राजभवन को चलागया, और
राजकुमार राजकुमारी राजा रानी नौकर चाकर ब्रह्म-
ऋषि और राजऋषि की कुटी की तरफ़ चलपड़े, राज-
कुमार और राजकुमारी के चित्तकी गति वाणवत् अपने
लक्ष्य ऋषि के चरणकमल में लगी है, कर्मेन्द्रियां
अपना काम कलकी तरह करती हैं, राजा रानी का
हृदय जंगल के देखने को उछल रहा है, जिसमें उनके
प्यारे बालक का पालन पोषण नौ वर्ष तक हुआ है, एक
मास राहमें व्यतीत होने के पीछे वनवृक्ष दीखने लगे,
ज्यों ज्यों राजकुमार और राजकुमारी समीप होते जाते
हैं त्यों त्यों उनके बालकपने का स्नेह बढ़ता आता है,
कब वनमें प्रवेश करें, कब वृक्षों, लताओं, कुञ्जों, पक्षियों,
और पशुओं को देखें, कब ब्रह्मऋषि और राजऋषि के
चरणकमल की रज को अपने मस्तक पर रक्खें, कब
मातृस्नेह युक्त नदी में मज्जन करें, इस सोचमें जाते
जाते अरण्य के मध्यभाग में पहुँच गये, पक्षियों को
मालूम होनेपर कि हमारे दोनों मित्र आरहे हैं, गगन
मण्डल में पहुँचकर सुगन्धित नये पुष्पों की वर्षा करते
हुये बड़े ज़ोरसे आनन्द के देनेवाले शब्द करते भये,
जिसको सुनकर राज समाजियों का शिर ऊपर को

उठगया, नेत्र आश्चर्य से युक्त होगया, राजकुमार सवको समझाकर कहनेलगा कि जो पक्षी ऊपर रमण करते हुये और पुष्पवृष्टि करते हुये साथ साथ चलेजाते हैं वे मेरे प्रिय मित्रगण हैं, वे अपने सच्चे प्रेमको प्रकट कर रहे हैं, उन्हें मुझे देखकर जो आनन्द होता है वह अकथनीय है, जो पक्षी नभविषे नहीं जासकते हैं, वे आगे वढ़ वढ़कर नृत्य करते जाते हैं, और अपने आह्लाद को दिखाते जाते हैं, आज तो घास फूस झाड़ झाड़ी वेल लता कुञ्ज वृक्षादिकों का औरही रूप रंग है, वे राजकुमार राजकुमारी को देख देखकर हृष्ट पुष्ट होरहे हैं, जिधर देखो उधर नवपल्लव निकले चले आरहे हैं, पत्तियां हरीभरी होरही हैं, मन्द सुगन्ध वायु के वेग से हिलती हुईं शाखायें दण्डप्रणाम करती हुईं निर्देश करती हैं कि आप सव चलते चलते थकगये होंगे, शीघ्र आनकर हमारी सुखदायी छाया में विश्राम करें, और हमारे अर्पण कियेहुये फलोंको पृथ्वी माता के वक्षःस्थलपर से उठा उठाकर पान करें, हे श्रोताओ! वहांका आनन्द कहने में नहीं आसक्ता है, वह जंगल मङ्गल हो रहाथा, जव ब्रह्मऋषि और राजऋषि की कुटीपर पहुँचने को एक दिन रहगया, तव भानु को उनकी सेवामें भेजकर अपने आगमन से सूचित किया, यह

सुनतेही दोनों देववर एक स्थानपर मङ्गल की सामग्री लेकर आशीर्वाद निमित्त बैठगये, राजकुमार को दूरसे आते देखकर उनके शिष्यगणों ने शङ्खध्वनि किया, जो नभतक गूंजउठा, बातकी बात में राजसमाज आनकर खड़ा होगया, और सब के सब उन दोनों महात्माओं के चरणकमलों को स्पर्श करके और साष्टाङ्ग प्रणाम करके सविनय हाथ जोड़कर खड़े होगये, तब उन ऋषियों ने राजकुमार और राजकुमारी और राजा रानी के शिरपर अपने अपने हस्तपद्म को फेरा, और मङ्गल करनेवाले प्रसाद को बड़े प्रेमसे दिया, वाह आज यह स्थान कैलास होरहा है, ब्रह्मऋषि विष्णु के और राज-ऋषि शिव के अवतार दिखाई देते हैं, उनकी आज्ञा पाकर सब फिर बैठगये, और ब्रह्मर्षि महाराज निम्न प्रकार कहनेलगे.

ब्रह्मर्षि—हे राजन्! यह संसार असार चित्त का विलास है, परमात्मा स्वयं इसमें अनेक रूप धारण कियेहुये विचर रहा है, और अपनी विचित्र शक्ति प्रेम को दिखा रहा है, इसकी चारोंतरफ़ धूम है, प्रेमही माया है, और मायाही प्रेम है, यह अकथनीय है, जब प्रेम ईश्वर में स्थित होताहुआ उसको जीव के कर्म-फल-भोगार्थ सृष्टि रचने की प्रेरणा करता है, तब वह

परमदयालु परमेश्वर सृष्टि रचता है, पहिला प्रेमका पात्र आकाश है, यह प्रेमकरके भरा है और यही कारण है कि और तत्त्वों को उनके कार्यों के सहित बड़े प्यारके साथ अपने में रखता है, कौन वस्तु ब्रह्माण्ड में है जिस में आकाश अनुगत नहीं है, या वह आकाश में अनुगत नहीं है, उसके रोम रोममें आकाश भरा है, आकाश के ही आश्रित होकर सूर्य, चन्द्र, तारागण चलते और प्रकाश करते हैं, विद्युत् चमकती है, मेघ वर्षा करताहै, उसके बाद वायु दूसरा प्रेमका पात्र है, यह प्रेम करके ही प्राणकी रक्षा करता है, चलनशक्ति का कारण प्रेम ही है, यदि यह कहीं साम्यावस्था को एक पलके लिये भी प्राप्त होजावे तो जीवमात्र अजीवित होजावें, यह प्रेमकी प्रेरणा करके अहर्निश चलता है, और अपने शरण आये हुवों की रक्षा करताहै, हर एक इसका कार्य प्रेमसे भरा है, परमात्मा के प्रेमका तीसरा पात्र अग्नि है, यह अपने कार्य में अद्वितीय है, यह अच्छे अच्छे दिव्य रूपों को पैदा करता है, अन्धकार को हटा करके प्रकाश को उत्पन्न करता है, बुद्धि की वृद्धि करता है, और आनन्द को फैलाता है, चौथा पात्र प्रेमका जल है, "जलम् जीवनम्" जलही जीवों का आधार है, विना जल के जीव नहीं रह सक्ता है, जहां जल गिरा वनस्प-

तियां हरी भरी होगई, उनके हर एक अङ्ग में जान आजाती है, वर्षा कालमें जलका प्रेम उमँग पर रहता है, यह अपने द्रष्टाको सुखी करता है, और अपने शरणागतको भोग्यसामग्री से तृप्त कर देता है, पांचवां प्रेम का पात्र पृथ्वी है, यह प्रेम से पूर्ण है, इसके प्रेम से जीव जन्तु उत्पन्न होते हैं, इसके प्रेम से जीते हैं; यही अपने करोड़ों बच्चे पहाड़, समुद्र, जीव, जन्तु, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, प्रेत, देवता, पितृ, वनस्पति इत्यादिकों को अपने वक्षःस्थल पर लिये हुये उनका लालन पालन करती है, हे राजन्! यह प्रेमही है जिस करके सूर्य के आस पास नवग्रह और करोड़ों तारागण हाहाकार मचाये हुये फिर रहे हैं, यह प्रेमही है जिस करके सारी सृष्टि का प्रादुर्भाव और लय होता है, यह प्रेमही है जिस करके एक जीव दूसरे की तरफ़ खिंचा जाता है, यह प्रेमही है जिस करके स्त्री पुरुष की, पुरुष स्त्री की, माता पिता, पुत्र पुत्री की, पुत्र पुत्री, माता पिता की, भाई बहिन की, बहिन भाई की रक्षा और पालन पोषण करते हैं, यह बरताव केवल देवता और मनुष्य ही में नहीं है, पशु, पक्षी, वृक्षादिकों में भी है, प्रेम करके ही सब नदियां समुद्र में दौड़ कर लीन होती हैं, प्रेम करके ही सूर्य समुद्र के जलको ऊपर खींच के जीवों के

रक्षार्थ बरसाता है, प्रेमही करके समुद्र अपने पुत्र चन्द्रमा को गोद में लेने के लिये ऊपर को उछलता है, प्रेमही करके वृक्षों में नव पल्लव आते हैं, फूल फल लगते हैं, देखो बच्चे देते ही गाय, घोड़ी, बंदरी, पक्षी अपने बच्चे के पीछे पीछे फिरा करते हैं, हे राजन्! प्रेम करके ही राजकुमार और राजकुमारी जो तुम्हारे सामने बैठे हैं अपने प्राण हथेली में रखकर आपको और रानी को दुष्ट शत्रुके बन्ध से छुड़ा लाये, प्रेम करके ही भानुने राजकुमार के साथ रहकर अनेक प्रकार का दुःख उठाया, प्रेमही करके तुम मेरे पास आये हो, प्रेम ही करके राजकुमारी ने राजकुमार को सिंह से बचाया; और उसका साथ दिया, प्रेम से ही आनन्द मिलता है, प्रेम से ही मुक्ति मिलती है, परमात्मा प्रेमका भूखा है, प्रेमके ही वश है, हे राजन्! जब तुम प्रजाके ऊपर प्रेम करोगे तब प्रजा तुम्हारे वशमें रहेगी, प्रजा जड़ है राजा वृक्षहै, जब जड़ बली होता है तो वृक्षभी बली होता है; फिर उसको कोई हिला नहीं सक्ता है, तुम प्रेम के आश्रय होकर राज्य करो, तुम अपने पुत्र राजकुमार के प्रेमको देखो, कैसे उसके साथ साथ पशु पक्षी घूमा करते हैं, कैसे उसके मुखको देखकर आनान्दित होते हैं, कैसे वृक्ष उसकी दृष्टि पड़ते ही मग्न होजाते हैं;

और प्रिय लगने लगते हैं, पूरा पूरा प्रेमका आना अति कठिन है, पूरा प्रेमका आगमन जब समझो जब प्रेमी के पास दूसरे जीव निडर होकर आवें, और वह भी उन जीवों से निडर रहे, ऐसा प्रेम केवल श्रेष्ठ साधुओं में ही होता है, गृहस्थों में नहीं होता है, और यदि किसी गृहस्थ में हो भी तो उसको साधुही समझना चाहिये, देखो बाहर की चिड़ियों को कौन कहे घर ही की चिड़ियां घर के लोगों को आते देख भाग जाती हैं, हे राजन्! यह तुम्हारा पुत्र साधु है, इसमें सब लक्षण साधु के घटते हैं.

राजाः—हे प्रभो! यह मेरा गया हुआ लाल केवल आपकी कृपा से मुझको फिर मिला है, इस लाल के पाने की अधिकारिणी प्रिय राजकुमारी चम्पावती है, यदि आप मेरे और रानी के विचार को ठीक समझें तो दोनों के विवाह की आज्ञा दें; यह स्थान इस यज्ञ के योग्य है, ऐसा सुनकर ब्रह्मर्षि और राजर्षि दोनों प्रसन्न हुये, और कहा कि हे राजन्! हम लोगों की पहिले से ही यही इच्छा है, इन लड़कों में जो शुद्ध सच्चा प्रेम है वह हमपर विख्यात है; ये दोनों धर्म के अवतार हैं, और संसार सुधारने के निमित्त इन्होंने जन्म लिया है, इनके आचरणको देखकर इतर स्त्री पुरुष भी उनके अनुचारी

बनकर संसार का कल्याण करेंगे, यह राजकुमार साधारण पुरुष नहीं है, यह परमात्मा का दर्शन बचपन में ही पाचुका है, इसकी तुलना कौन करसक्ता है, प्रकृति ने अपने हाथ से इसके शरीर को रचा है, वैसेही यह राजकुमारी भी जानकी माता का अवतार है, अपने रूप रंग गुण स्वभाव में अद्वितीय है, यह तुम्हारे दिये हुये लाल की रक्षिका बनने योग्य है, आपका शुभ विचार अविनाशी फल देगा, शुभकार्य में देरी करना नहीं चाहिये, विवाह-सामग्री एकत्र करना चाहिये, इसके पश्चात् राजकुमारी अपने पिता राजर्षि की कुटीको गई, और राजकुमार ब्रह्मर्षि की कुटी में रह गये, और राजा रानी अपने स्थान को पधारे.

राजकुमार और राजकुमारी के वापिस आने, विजय प्राप्त होने और दोनोंके विवाह होनेका समाचार चारों तरफ़ फैलगया, ऋषि, ऋषिपत्नी, वनस्पति, नदी, नाले, जीव, जन्तु, पशु, पक्षी, घास, फूस सब यह हाल सुनकर मग्न होगये, और अपने हृदयस्थ आनन्द को अपने स्वभावानुसार बाहर लाकर प्रकट करने लगे, जिसको देख करके द्रष्टाको अनुभव होताथा कि आज कल अकथनीय दशा को सब के सब प्राप्त हैं, जो पेड़ पालो, रूख रूखरी, घास फूस पहिले सूखे मालूम होते

थे वे अब हरेभरे दिखाई देते हैं, फल के वृक्ष काल-विपरीत नवीन पल्लव व कली निकाल रहे हैं, और फल-वृक्ष फलों से लदगये हैं, जल चारों तरफ़ वरस गया है, फूलों फलों के वृक्षोंपर से गर्द गुब्बार धुल उठा है, और वे नेत्रोंको बड़े प्रिय लगते हैं.

विवाह के उत्सव में ऋषिपत्नियों ने देवपत्नियोंकी तरह गन्धर्व राग से सब जीवोंको मस्ताना बना दिया है, भूख प्यास को भूलेहुये सबकी श्रोत्रेन्द्रिय उन्हीं के मुखारविन्द की ओर लगी है, ऋषिलोगों ने भी विधि-पूर्वक वेदमन्त्रों का उच्चारण करके जंगल को मंगल करदिया है, इन दोनों के स्वरों के साथ पक्षियों ने भी अपनी तानसेनी तानको तानदिया है, जिस समय बरात ब्रह्मर्षि महाराज की कुटी से चली, एक अद्भुत दृश्य दिखाई देनेलगा, कहींपर भील भीलिनी मुँह बाये दांत खोले नाच रही हैं, कहीं पर मोर मोरनी नृत्य कररहे हैं, कहींपर अहीर फरी खेलते चले जा रहे हैं, कहींपर दर्शनीय प्रिय मांगलिक पखेरू नभ विषे मंगल के गीत गाते चले जारहे हैं, राहके दोनों किनारे अनेक प्रकार के स्वयंभू पुष्पतरु, पुष्पों से खिले हैं, उनके समीप समीप एक तरफ़ ऋषि और दूसरी तरफ़ ऋषिपत्नी वैदिकमन्त्रों को अनुदात्त, स्वरित और

उदात्त स्वरों के साथ उच्चारण करते हुये आर वीच वीच में शान्ति के पाठ सुनाते हुये चले जारहे हैं, ऐसाही आनन्द का दृश्य राजर्षि महाराज की कुटीतक चलागया है, इस दृश्य में कहीं वनावटका नाम नहीं, सव जगह प्रकृति की रमणीय सरलता और सुन्दरता दिखाई देरही है, आज पूर्णमासी का दिन है, चन्द्रमा पूर्णकला से उदय होकर ऊपर को चला आरहा है, श्वेत पुष्प और श्वेत वस्त्रकी कान्ति चन्द्रप्रकाश करके चौगुनी दिखाई देती है, राजर्षि के तरफ़ भी वैसाही प्रकृतिजन्य शोभनीय सामान शुद्धता के साथ तैयार है, माया अपनी चित्ताकर्षिणी शक्तिको दिखा रही है, ऐसे अनुपमेय दृश्यकी कौन सराहना करसक्ता है. भूत, प्रेत, गन्धर्व, किन्नर, देवता, यक्षादिक सव मनुष्य-शरीर धारण कियेहुये वरात को देख रहे हैं, एक प्रहर रात्रि व्यतीत होतेही कन्याका संप्रदान सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवताओं को साक्षी देकर कियागया, और फिर सव अपने अपने स्थानको मुदित होकर विश्राम निमित्त पधारे, और सव व्यवहारोंको त्यागकर अखण्ड विस्तृत सुषुप्ति में प्रवेशकर आनन्द में मग्न होगये, सूर्यदेव के उदय होने के पहिलेही सव वराती घराती ने उठकर शौच स्नानकर्म करके नित्यकर्म किये और

फिर मित्र, मित्रभाव से एक दूसरे के साथ मिले, न लेनेकी फ़िक्र न देनेका तरद्दुद है, सबका चेहरा प्रफुल्लित है, ईश्वरकीर्तन जगह जगह होरहा है, आनन्द की झड़ी लगी है, विषमता का नाम नहीं है, समता चारों ओर छागई है, सबकी वृत्ति एक परमात्मा के तरफ़ लगी है, राजकुमार राजकुमारी चन्द्र चकोरवत् एक दूसरे को देखकर मुदित होरहे हैं, जो सुख आज अरण्य विषे है, वह राजधानी में कहां, यहां सब खटका रहित, वहां सब खटका सहित, यहां सब सामग्री अविनाशी ईश्वरकृत, वहां सब नाशी मनुष्यकृत, इहां सर्व ईश्वरशक्तियों का आश्चर्यमय दृश्य, वहां मनुष्यों की अल्पबुद्धि का कृत्रिम, यहां सुख का सदन, वहां दुःखका भवन, यहां चित्तवृत्ति आत्माकार, वहां अनात्माकार, इसकी उसकी क्या सादृशता है, विवाह के तीसरे दिन अरण्य के उस भाग को देखने को राजकुमार और राजकुमारी चले, जहां पहिले आनकर भानू और राजकुमार रहे थे, इस जगह को देखते ही राजकुमार बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ, और राजकुमारी को अपने खेल, कूद और शयन के स्थान को बताया, उन दोनों को देखकर वे पशु पक्षी जिन्होंने राजकुमार को बचपन में देखा था उनके सामने आन

कर हिंग हिंग चिंक चिंक करने लगे, और उनके चेहरे से मालूम होता था कि उनका हृदय अतिप्रसन्न है, और राजकुमारी अपने प्राणपति राजकुमार के बताई हुई जगहों को जहां वह खेलते कूदते और सोते थे, बड़े सत्कार और प्रतिष्ठा के साथ देखकर मनमें नमस्कार करती थी, और यह उनकी भावना राजकुमार को अतिप्रिय लगती थी, घूमते घामते नदी के उस किनारे पर पहुँचे जहां पहिले राजकुमार को एक स्त्री और एक पुरुष मिले थे, और जिनको उसने अपना माता पिता समझाथा, उधर जाते ही उनको एक स्त्री और एक पुरुष शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण किये हुये घूमते घामते फिर दिखाई पड़े, राजकुमार को मालूम होगया कि हो न हो ये वेही महाश्रेष्ठ स्त्री पुरुष हैं, जिनको मैंने बचपन में देखा था, दौड़कर उनके चरणकमल को स्पर्श किया, और हाथ जोड़ते हुये खड़े होकर विशाल स्तोत्रों करके स्तुति निम्नप्रकार करनेलगा.

अखण्डं चिदानन्द देवाधिदेवं ।
मुनीन्द्रादि रुद्रादि इन्द्रादिसेवं ॥
मुनीन्द्रादि इन्द्रादि चन्द्रादि मित्रं ।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं ॥ १ ॥
धरा त्वं जलाग्नी मरुत्वं नभस्त्वं ।

घटस्त्वं पटस्त्वं अणुस्त्वं महत्त्वं ॥
मनस्त्वं वचस्त्वं दृशस्त्वं श्रुतस्त्वं ।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते समस्त्वं ॥ २ ॥
अडोलं अतोलं अमोलं अमानं ।
अदेहं अछेहं अनेहं निदानं ॥
अजापं अथापं अपापं अतापं ।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमापं ॥ ३ ॥
न ग्रामं न धामं न शीतं न उष्णं ।
न रक्तं न पीतं न श्वेतं न कृष्णं ॥
न शेषं अशेषं न रेखं न रूपं ।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं ॥ ४ ॥
न छाया न माया न देशो न कालो ।
न जाग्रं न स्वप्नं न वृद्धो न बालो ॥
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्यं अरम्यं ।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं ॥ ५ ॥
न बन्धं न मुक्तं न सौनं न वक्तं ।
न धूम्रं न तेजो न यामी न नक्तं ॥
न युक्तं अयुक्तं न रक्तं विरक्तं ।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अशक्तं ॥ ६ ॥
न रुष्टं न शुष्टं न इष्टं अनिष्टं ।
न ज्येष्ठं कनिष्ठं न मिष्ठं अमिष्ठं ॥

न अग्रं न पृष्ठं न तुल्यं न गृष्ठं।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अधिष्ठं ॥ ७ ॥
न वक्त्रं न घ्राणं न कर्णं न अक्षं।
न हस्तं न पादं न शीशं न लक्षं ॥
कथं सुन्दरं सुन्दरं नाम ध्येयं।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अप्रमेयं ॥ ८ ॥

उसकी और राजकुमारी की नम्रता, सरलता और दयालुता को देखकर वह स्त्री बड़े हर्ष के साथ कहने लगी, हे पुत्र ! जब हम दोनों को तूने अपने बचपनमें यहीं देखा था, तो तू मुझे अपनी माता जानकर मेरे गोद में कूद पड़ाथा, और मैंने तुझको उठालिया, फिर मैंने तेरे हर्षार्थ अनेक तमाशे दिखाये, और तू उनको देखकर बड़ा खुश हुआ, फिर तेरे पिताने तुझको बहुत तमाशे दिखाये, तुझको याद है या नहीं? राजकुमार ऐसा सुनकर कहने लगा आप मेरी माता हैं, और ये (अँगुली उठाकर) मेरे पिता हैं, आप लोग कृपा करके मेरे कल्याणार्थ मुझको उपदेश दें, इस पर पिता ब्रह्मदेव इस प्रकार कहने लगे.

ब्रह्मदेवः—हे पुत्र ! मैं ब्रह्महूं, कुल ब्रह्माण्ड मेरेसेही उत्पन्न होता है, और मेरेमेंही लीन होता है, मुझसे पृथक् सत्ता किसी की नहीं है, मुझसेही आकाश, वायु,

अग्नि, जल, और पृथ्वी की उत्पत्ति है, और मेरेमेंही सबका लय है, मेरे आत्मा को वही समझता है, जिसने अपने आत्मा को समझा है, जिसने अपने को नहीं समझा है वह मुझको कदापि नहीं समझ सक्ता है, हे पुत्र! समझ तू क्या है, सावधान होकर सुन, मैं कहता हूं, इस पृथ्वी में आकाश, वायु, अग्नि, जल, प्रवेश करके स्थित हैं, यह देखने में वड़ी कुरूपा प्रतीत होती है, कहीं ऊंची, कहीं नीची, कहीं खड्ढ, कहीं मढ, कहीं लाल, कहीं काली, कहीं पीली, कहीं नीली, पर इसके भीतर अनुपमेय अद्भुत शक्ति, और पदार्थ हैं, जिनका आजतक पता न लगा, और न लगेगा, जितनाही अन्वेषण करते जाते हैं, उतनाही इसमें से अलौकिक वस्तु निकलती आती हैं, इसमें तैलिक, कानिक, वैद्युतशक्तियों का प्रमाण नहीं है, अन्न, वनस्पति, औषध्यादिकों की उपार्जनशक्ति की अवधि नहीं और कितनी और कहांतक है कोई कहने को समर्थ न भया है और न होगा, यह जीवों से भरी पड़ी है, वास्तव में यह जीवरूपही है, इसी के सार रससे जीवोंका शरीर वनता है, तेरा शरीर जो ऐसा सुन्दर दिखाई देता है वह इसी पृथ्वीका सार रस है, हे पुत्र! पृथ्वीवत् तेरे मस्तक का आभ्यन्तर भाग हाड़,

मांस, रुधिर, मज्जादिकों से भरा पड़ा है, इन सबको देखतेही घृणा उत्पन्न होती है, पर उन्हीं में प्राप्त जो जो शक्तियां भरी पड़ी हैं वे जब प्रादुर्भाव को प्राप्त होती हैं तो सबको आश्चर्य से भरदेती हैं, इसी में मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र भरेपड़े हैं, इसी में से करोड़ों शुद्ध वृत्तियां निकल कर बाह्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादिक विषयों को लाकर जीवात्मा को अर्पण करती हैं, और उनको भोग करके वह बड़े हर्षको प्राप्त होता है. इसी में पुरुष अनेक प्रकार के शिवालय, धर्मशाला, अनाथालय, भांति भांति के स्त्री पुरुषों के चित्र, पहाड़, समुद्र, नदी, नाले, कूप, तड़ाग, बावली के आकारको पहिलेही धारण करलेता है, फिर उनकी स्थूल प्रतिमा निकाल कर बाहर बनाता है, इसीकी शक्ति करके पुरुष अस्त्र शस्त्र वस्त्रादिकों को बनाता है, इसीकी शक्ति करके पुरुष देवता होजाता है, और इसी की शक्ति करके जिस प्रकार जीव ब्रह्म होजाता है मैं कहताहूं, तू सावधान होकर सुन, जब योगी क्रमशः क्रमशः सुषुम्णा नाड़ीको जो कि मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक पृष्ठ-वंश (रीढ़) में होकर चली गई है उद्दीपन करता है, और वह चलने लगती है, तब ध्यान समय जो कुछ ब्रह्माण्डभर में वर्तमान होरहा है वह सब उस योगी

के मस्तकगत ज्ञानचक्षु के सामने ऐसेही दिखाई देता है जैसे जाग्रत् अवस्था में उसके चर्मदृष्टि के सामने बाह्यविषय दिखाई देते हैं, और फिर उन सब पदार्थों का वही ज्ञाता होजाता है, और अपने इच्छानुसार दूसरा शरीर धारण करके लोक लोकान्तर में रमण करता है, और जब ऐसे दृश्य के द्रष्टा होकर उपराम होजाता है, तब ब्रह्म में लीन होजाता है, जैसे कुल ब्रह्माण्डका केन्द्र ब्रह्मलोक है, वैसेही इस तेरे शरीर का केन्द्र ब्रह्मरन्ध्र है, जब यहां तुरीयावस्था में जीव सुशोभित होकर ब्रह्मानन्द को भोगता है, तब न उसको वहां शोक है, न मोह है, और जब जीव हृदय में सुषुप्ति अवस्था बिषे शयन करता है तब वह शोक भय से रहित होताहै, पर अज्ञान को लियेहुये आनन्द को भोगता है, और जब सोकर उठता है तब कहता है कि ऐसा आनन्द से सोया कि ख़बर न रही, फिर जब कंठस्थान में स्वप्नावस्था बिषे विराजमान होता है तो अपने सूक्ष्म शरीरमें ही अनेक प्रकार के लोकों को और शरीरों को रचकर उनका द्रष्टा बनता है, और उनसे राग द्वेष करके सुखी दुःखी होता है, और फिर जब नेत्रस्थानबिषे जाग्रत् अवस्था में पहुँचता है तो बाह्यपदार्थों को देखकर और उनके साथ राग द्वेष

करके अपने को कभी सुखी कभी दुःखी मानता है; और चूंकि विषय शीघ्र उत्पन्न और नष्ट होते हैं इसी कारण उसका सुख दुःख भी शीघ्रही उत्पन्न और नष्ट हुआ करता है; हे पुत्र ! चाहे अपने में स्वर्ग भोग और चाहे नरक भोग यह सब तेरे हाथ है.

हे पुत्र ! सुन मैं कौनहूं और जो यह तुम्हारे सामने खड़ी है यह कौन है, मैं तुम्हारा पिता ब्रह्म हूं और यह तुम्हारी माता प्रकृति है, और जो कुछ इन्द्रियों का विषय लोक, लोकान्तर, नदी, नाले, पहाड़, समुद्र, अन्न, जल, वनस्पति, शरीरादिक हैं चाहें स्थूलहों चाहें सूक्ष्महों सब तुम्हारी माता प्रकृति के रूप हैं; और उनके अन्दर जो इन्द्रियों का अविषय है और जिसको न मन मनन करसक्ता है, और न बुद्धि जान सक्ती है, वह चेतन मैं हूं, मैं तुम्हारी माता प्रकृति करके सदा आच्छादित रहताहूं, और उनके कार्यविषे भी मैं गुप्त होकर शयन किये स्थित रहताहूं, जब मेरा प्रिय पुत्र यानी मेरा भक्त मेरे दर्शन की अभिलाषा करता है, तब तुम्हारी माता प्रकृति थोड़ी देरके लिये हट जाती है, और तब वह मेरा दर्शन पाकर अपने में मुझको अनुभव करने लगता है, और ऐसा करते ही मुझको वह अपने में ही पाने लगता है, और द्वैतदृष्टि उसकी नष्ट

होजाती है, हे पुत्र ! तुम्हारी माता प्रकृति मेरे साथ अपना पातिव्रत्य धर्म को पूरा पूरा निर्वाह करती है, और उनसे मैं अति प्रसन्न हूं, और जैसी उनकी इच्छा होती है वैसेही मैं करता हूं, पर केवल एक अवस्था में मैं उनका कहना नहीं मानता हूं, और वह यह है कि जब मेरा कोई भक्त दुःखी होता है, और आर्तवाणी से मुझको पुकारता है, या अपने हृदय में स्मरण करता है, तब मैं शयन से शीघ्र उठकर उसके तरफ दौड़ पड़ता हूं, और उसके दुःख को उसी क्षण दूर करताहूं, ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है, यह कभी नहीं टूटी है और न टूटेगी, हे पुत्र ! जब दुष्ट प्राणियों के पाप से पृथ्वी लद उठती है, और सज्जन पुरुष जब दुःखी होने लगते हैं, तब मैं तुम्हारी माता प्रकृति की प्रार्थना को न सुनता हुआ सामान्यरूप से विशेषरूप को धारण करता हुआ अपने भक्तों के मध्यमें अवतार लेताहूं, और उनके शत्रुओं का विध्वंस करके पृथ्वी के पापरूप भार को दूर करके अपने भक्तों को सुख देता हूं, तुम्हारी माता की मेरे ऊपर बड़ी कृपा इस बातकी रहती है कि जब वह जानजाती है कि मैं अवश्य पृथ्वी पर जाकर भक्तों के कल्याणार्थ अवतार लूंगा तब वह मेरी शुभेच्छा को समझ कर किसी श्रीमान् कुलीन कुलविषे मेरे शरीर

को अति सुन्दर और मेरे सखा वर्गों के शरीरों को उसी जगह रचके तैयार कर रखती हैं, ताकि जब मैं उतरूं तब अपने सखा सहित क्रीड़ा करके अपने भक्तों को आनन्द दूं, हे पुत्र ! यदि तू अपने देह में अपने आत्मा का अन्वेषण अपनी चर्मदृष्टि से करे तो कहीं उसका पता न पावेगा, जहां देखेगा, वहां हाड़, मांस, मल, मूत्र, रक्त, मज्जा के सिवाय और कुछ न देखेगा, पर ज्ञानदृष्टि उठाते ही तुझ को ज्ञात होगा कि कोई गुप्त वस्तु इसके अन्दर अवश्य है, जिस करके इसका यह आडंबर चला करता है, यानी जिस करके सब इन्द्रियां अपना अपना कार्य करती हैं, इसी प्रकार कुल ब्रह्माण्ड में स्थित रहते हुये भी मुझको कोई देख नहीं पाता है यद्यपि मैं उसके सामने अनेकरूप से प्रकट होता रहता हूं, मैं केवल विचारदृष्टि से जानने के योग्य होता हूं, जिस भक्तने मुझको ज्ञानचक्षु से देख लियाहै, और प्रेम के पाशसे बांध लिया है, उसके आन्तरिक नेत्र के सामने अहर्निश खड़ा रहता हूं, देख मैं तुझको दिव्यदृष्टि देता हूं, तू अपने नेत्र को बंद कर, और मेरा ध्यान सब वस्तुओं में कर, जैसे लोक तिलविषे तेलका, दूधविषे घृत का, और शर्कराविषे रसका ध्यान करते हैं, उसने वैसाही किया, और फिर जब कहने

पर नेत्र को खोला तब सब में परमात्माही देखनेलगा, और उन्मत्त होकर कहनेलगा कि मैंही कार्यकारणात्मक ब्रह्महूं, मैंही ईश्वर हूं, मैंही ब्रह्मा हूं, मैंही विष्णु हूं, मैंही रुद्र हूं, मैंही आकाश हूं, मैंही वायु हूं, मैंही अग्नि हूं, मैंही जल हूं, मैंही स्थल हूं, मैंही समुद्र हूं, मैंही पहाड़ हूं, और जो कुछ दृष्टिगोचर है, सब मैंही हूं, हे पिता ! जो तुम हो वही मैं हूं, मेरे तुम्हारे में कोई भेद नहीं है, और न कोई भेद मेरे और मेरी माता प्रकृति में है, और न राजकुमारी में है, यही हाल राजकुमारी का भी होगया, राजकुमार और राजकुमारी दोनों अहम् और ममत्व को भूल कर अपने को ब्रह्मरूप और सारे ब्रह्माण्ड का स्वामी पाते हैं, उनकी द्वैतभावना मिट गई, अद्वैत भावना आगई, फिर न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है, न स्त्रीभाव है, न पुरुषभाव है, ब्रह्मदेवने देखा कि यह दोनों मेरे में लीन हुआ चाहते हैं, झट अद्वैतशक्तिको तिरोभूत कर लिया, द्वैतको खड़ा कर दिया, फिर राजकुमार और राजकुमारी अपने को पृथक् अपनी माता प्रकृति और पिता ब्रह्मको देखने लगे, पर अद्वैत का ज्ञान ज्यों का त्यों प्रतिबिम्बित हो उनके अन्तःकरण में जमगया, और उनको ब्रह्मप्रकृति का यथार्थरूप हस्तामलकवत् दीखने लगा.

ब्रह्मने कहा हे पुत्र ! तुम मेरे ही रूप हो, तुम जिस निमित्त आये हो उस कामको पूर्ण करो, दुनिया पाप से लदी है, पुरुषार्थहीन होरही है, और इसी कारण दुःखी होरही है, तुम्हारे और राजकुमारी के दर्शनको पाकर और उपदेश को सुनकर सबका अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, और विधान कियेहुये मार्ग पर चलकर परम आनन्द को प्राप्त होंगे, अब तुम दोनों राजा रानी को राजगद्दी पर बैठाल कर भारतभूमि पर विचरो, और अपने दर्शन से सबको कृतकृत्य करो, यही मेरी आज्ञा है, इसी कार्यनिमित्त तुमको मैंने भेजा है, कुछ काल ऐसा करके और कुछ काल तक राज्य करके और प्रजा को सुख देकर और इतर राजाओं को अपनी राजनीति का उदाहरण दिखा कर मेरे धामको जो तुम्हाराही धाम है चले आना, तुम्हारे सामने और तुम्हारे पीछे ब्रह्म-विद्या को पाकर राजा प्रजा सब शरीरों में अपनेही रूप देख कर जीवमात्र पर दया करेंगे, उनकी उन्नति अपनी उन्नति समझेंगे, जो अपने से नीचे योनि को प्राप्त हैं उनको शनैः शनैः ऊपर ले आने का यत्न करना, जब मनुष्यमात्र को मालूम हो जायगा कि जितने शरीर हैं उन सबमें शरीरी (जीव) एकही है तब एक दूसरे से ऐसा बरताव करेंगे जैसे भाई भाई से करता है, जो जीवात्मा

ऋषि में है वही ब्राह्मणों में है, वही क्षत्रियों में है, वही वैश्यों में है, और वही शूद्रों में है, वही कीड़ों पतिंगों में है, वही पशु पक्षी में है, भेद केवल जड़शरीर में है, चेतनात्मा में नहीं जो ब्राह्मण क्षत्रिय अपने कुलीनता के अभिमान में आन कर वैश्य शूद्र या पशु पक्षी कीड़े आदिकों को दुःख देता है, या उनको बुरा समझता है, वह उनके शरीरों में स्थित होते हुये मुझको बुरा समझता है, और दुःख देताहै, और उसका फल वह नहीं समझसक्ताहै कि क्या होगा, सब जीव मेरे तरफ क्रमशः चले आरहे हैं, जो मेरे उन बच्चों के उन्नति में सहायक होगा वह मेरा प्रिय आत्मा होगा, वही मेरा पूरा भक्त कहलावेगा, ऐसा उपदेश करके वे स्त्री और पुरुष गुप्त होगये, और राजकुमार और राजकुमारी राजऋषि की कुटी पर लौट आये, जब ब्रह्मऋषि और राजर्षि ने राजकुमार और राजकुमारी के चेहरे पर ब्रह्मतेजको देख आश्चर्य में आगये, और दोनों ने मनही मनमें अपने उपास्यदेव ब्रह्मको नमस्कार किया, फिर हँसते हुये उनके जाने आने का हाल पूछा, उसके उत्तर में सारा वृत्तान्त राजकुमार ने उन दोनों से गुप्तस्थान में कह सुनाया, उसको सुन कर वे अति प्रसन्न हुये, और आशा का अंकुर उनके अन्तःकरण में जमा कि किसी न किसी दिन इन दोनों

के द्वारा हमको ब्रह्मदेव का दर्शन मिलेगा, और फिर उनको और राजा रानी को राजधानी जाने की आज्ञादी.

दूसरे दिन प्रातःकाल सबकी तैयारी होने लगी, वाह एक वह दिन था कि राजकुमार और राजकुमारी के संग्रामक्षेत्र से वापस आने पर चारों तरफ आह्लाद फैला था; और एक दिन आजहै कि चारों तरफ उदासी छा रही है, राजकुमारी चंपावती ऋषिकन्याओं से मिल कर, और छोटे वृक्षों, लताओं, पशुओं, पक्षियों के तरफ अंगुली उठा कर नेत्राम्बु होती हुई कहती है, हे मेरी प्यारी, सखियो ! उन विचारे जीवोंपर दया रखना, उन को मेराही रूप जानना, इनको मैं तुम्हें सौंपतीहूं, इनको अन्न जल से यथोचित सिंचन करती रहना, इनको किसी प्रकार का दुःख न पहुँचने देना, इनका दुःख मेरे दुःख का कारण बनेगा, क्योंकि मेरा प्राण इन्हीं में लगा रहेगा, जहां कहीं मैं रहूंगी जब मुझ में आनंदकी फुरना होने लगेगी तब मुझको मालूम होजायगा कि मेरे प्यारे, गूंगे, वहिरे, मित्र सब आनंद से हैं, और जब मेरे हृदय में उदासी होने लगेगी तब मेरे में फुरना होगी कि मेरे मित्रगण दुःखी हैं, यह बात होरही थी कि इतने में समीपस्थ जीव हरिण, हरिणी, गाय, बैल, केहरि, नाहर, गज, अश्व, मोर, मोरनी, कपोत, कपोती,

मैना, कोकिलादि दौड़े हुये चले आरहे हैं, और बात की बात में चुप चाप खड़े होगये, उनके नेत्रोंसे जल बह रहा है, मुख कुम्हिला गया है, उनके पास जाकर उनके ऊपर राजकुमारी ने हस्तकमल फेरा, और उन को अपने अपने स्थान पर जाने की आज्ञा दी, और वे घूम घूम कर पीछे देखते हुये आगे को वापिस चले जाते हैं, अब रहे वृक्षादि, वे तो चल सके नहीं, कैसे राजकुमारी के पास आवें, और जो सेवा सत्कार उन को मिला है, उसके बदले में अपनी शुश्रूषा कैसे दिखावें, पर प्रेम बड़ा बली होता है, उसको कोई रोक नहीं सक्ता है, उन्होंने वायुदेव की सहायता करके अपने पत्ते और शाखायें बड़े वेग से हिलाये, राज-कुमारी का चित्त शीघ्र उनके ऊपर जा पड़ा, उससे न रहागया, फौरन दौड़कर उन वृक्षों और लताओं को अपने युगल हस्तसे स्पर्श किया, और उनके तप्त आत्मा को शान्त किया, उनके पात पातसे वियोग का शोक टपक रहा था, और उन सबको दंड प्रणाम करके अपनी कुटी में वापिस आई, यही हाल राजकुमार के तरफ़ भी था. पशु, पक्षी, पेड़, पालो, नदी, नाले उदास हो रहे थे, सबसे मिल मिला कर ब्रह्मऋषि और राजर्षि के पास आया. प्रश्न उठता है क्या यहां भी माया अपना

अकथनीय कार्य दिखाती हैं ? हां दिखाती है, जब उनके चरणों पर गिर कर हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक आज्ञा जानेकी मांगी तो ब्रह्मऋषि का ब्रह्मज्ञान एक पक्षी की सूरत में होकर थोड़ी देर के लिये उड़गया, और वह विह्वल होकर उसको अपने हृदय से लगाकर अपने अश्रुपातरूपी गंगजल से उसके मस्तक को सिंचन किया, और वह प्रेम का जल शरीराभ्यंतर पहुँच कर बहत्तर करोड़ नाड़ियों तक शुद्ध कर दिया, और फिर आशीर्वाद दिया यह कहते हुये कि हे पुत्र ! कभी कभी यहां आकर दर्शन दे जाना, और जब राजकुमारी चरण स्पर्श करने को आई तो जो हाल राजकुमार की विदाई में था उसकी अष्टगुनी अधिक विह्वलता राजकुमारी की विदाई में हुई, उसको चरण छूतेही अपने हृदयसे लगा कर रोते हुये ब्रह्मऋषि बोले हे जगदम्बे ! तू मुझको वैसी ही प्यारी है जैसे सीता जनक महाराज को थी, जब वह अपनी कन्या के प्रस्थान के समय अधीर होकर रोने लगे तो मेरी कौन गिनती है, हे पुत्रि ! यह संसारी मोह ऐसाही बली है, तू सब कुछ जानती है, मेरे कहने की कोई आवश्यकता नहीं, तू सदा सौभाग्यवती है, और रहेगी, और तेरा पति सदा तेरी इच्छानुसार चलता रहेगा, और तुम दोनों के दर्शन से सारा संसार हरा

भरा रहेगा, और तुम दोनों सदा सब के पूज्य होगे, हे पाठकजनो! मेरी लेखनी डगमगा रही है. दिल धड़क रहा है हृदय में कंप उठता चला आरहा है, क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता है, पिता पुत्री का वियोग है, सुनो जिस समय राजकुमारी रोती हुई अपने पिता के चरणपर गिरपड़ी वह हक्का बक्का गये, कहां उनका शरीरहै, और कहां शरीरी है, उनको नहीं मालूम है, मूकवत् खड़े हैं, जब सँभले लड़कीको उठाकर छाती से लगाकर कहा हे पुत्रि! तू जानती है कि तेरी माता जब तू केवल तीन वर्ष की थी इस दुःखमय संसारको त्याग कर असंसारी होकर मेरा साथ छोड़कर स्वर्गको पधारी, और मैंने माता पिता दोनों बनकर यथाशक्ति इस कुटी में तेरा पालन पोषण किया, इस कारण तेरे में मेरा मातृ और पितृस्नेह दोनों हैं, इस स्नेहरूपी समुद्र का वारापार नहीं, पर संसार में लड़की दूसरे घरकी होती है, एक न एक दिन उसको पिता से दूर होना पड़ता है, इस ईश्वर की बांधी हुई मर्यादा को कोई उल्लंघन नहीं करसकता है, मैं अपनी प्रेमकी नदी को तेरे उस प्रेम की नदी में डालता हूं जो तेरे पति की ओर बह रही है, यह तेरी नदी अब और ज़ोर से बहेगी, और परमात्मा से प्रार्थना है कि वह

तेरे प्रेम की नदी सदा उमंगती रहै, यह कह मत्था सूंघा, और आशीर्वाद दिया, इतने में राजकुमार आनकर राजऋषि महाराज के चरणपर गिर पड़ा, और उसको अपने नेत्र के जल से धोया, राजकुमार को छाती से लगाकर ऋषि ने कहा, हे पुत्र ! तुम राजनीति और धर्मनीति में निपुण हो, सब शास्त्रोंके ज्ञाता हो, मेरी आत्मजा तुम्हारी भार्या है, और मेरी नन्दनी तुम्हारी अर्धांगी है, तुम जानते हो कि तुम्हारा मेरा सम्बन्ध कितना कोमल है, तुम्हारे दुःखी होने से वह दुःखी, और उसके दुःखी होने से मैं दुःखी, इस दुःखत्रय से दूर होने का यत्न सदा करते रहना, मेरे आशीर्वाद से तुम दोनों फूलो फलोगे, और सूर्य चन्द्र की तरह संसार में प्रकाशते रहोगे,इसके बाद अन्य ऋषियों और ऋषिपत्नियों के चरण को छूकर और आशीर्वाद लेकर राजा रानी के साथ राजधानी के तरफ़ चले, उस समय मेरी बुद्धि प्रकृति–विकृति की विकलता को देखकर घबरागई, नदी नालोंका बहना बंद होगया, उनका जल क्रियारहित होगया, वृक्षों की पत्तियां संकुचित होगईं, और ऐसे कुम्हिलाई हुई प्रतीत होने लगीं, जैसे लजावती (पौधा) छूने से और कोमलवती (पौधा) छाया के पड़ने से सिकुर जाती है, वायु-

देव भी सन्नाटे में आगया, सब जीव जंतु उकला उठें जिधर देखो उधर सन्नाटा छा गया है, न कोई बोलता है, न कोई चलता है, सच कहा है कि प्रेम प्रेमी को अंधा, वहिरा, और गूंगा बना देता है, उसके चित्त की वृत्ति लगातार प्रिय के तरफ़ तैलधारावत् चला करती है, जब मन सहायक बने, तो इन्द्रियां अपना कार्य करें, मन उन्मनी बन बैठा, जीव नेत्र के होते हुये भी अनेत्र है, वाणी के होते हुये भी अवाक्य है, श्रोत्र रखते हुये भी श्रोत्रहीन है, केवल एक लक्ष्य प्रिय की ओर झुका है, न तनुकी शुद्धि है, न धनकी फ़िक्र है, राजकुमार ने सोचा कि इन प्रेमियों को ऐसी दशा में छोड़ जाना ठीक नहीं. चन्द्रमुखपर हास लाकर बोले, हे मेरे शुभचिन्तक! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि थोड़ेही काल में नैमित्तिक कार्य को करके मैं आपलोगों का फिर दर्शन करूंगा, और इस समय के वियोगजन्य ताप से तपित हृदय को शीतल करूंगा, ऐसी दृढ़ प्रातिज्ञा को सुनकर सबका दिल आनंद से खिल उठा, विकलता दूर होगई, शांति आगई, आशा बड़ी चीज़ है, आशाही सब पुरुषार्थ कराती है, स्वर्ग की आशा शुभ कर्म यज्ञादि कराती है, ब्रह्मलोककी आशा सच्छास्त्र का विचार कराती हैं, फिर जंगल मंगल होगया, नदी

नाले वहने लगे, पर प्रेम और आशा अपना अपना बल दिखा रहे हैं, प्रेम की प्रेरणा करके लोगों का मुख राजकुमार और राजकुमारी की तरफ़ फिर फिर-कर देखने लगता है, पर आशा करके उनका पैर आगे को बढ़ता जाता है, मन बेचारा कभी इधर और कभी उधर हो जाता है, वह भी घवड़ा गया है, किसका साथ दे, यही उस तरफ़ का भी हाल था; वाह प्रेम वाह आशा तुम दोनों की धूम धाम है, जब तुम दोनों मित्र होजाते हो तो संसार भर को हिला देते हो, सब कोई गिरते पड़ते अपने स्थान पर आये, और कुछ कालतक लोगों के हृदय में राजकुमार और राज-कुमारी का स्मरण बना रहा, काल सुख दुःख दोनों का नाशक है, और शांति का देनेवाला है, शनैः शनैः सबका हृदय शांत होगया, एक प्रेम का समुद्र शांत होगया; दूसरा समुद्र प्रेम का उछला हुआ चला आ रहा है जिस समय राजा रानी राजकुमार और राजकुमारी के आगमन की समाचारपत्री राजधानी में पहुँची नगर भर में आनन्द की वर्षा होने लगी, अगवानी लेने को प्रजा की तय्यारियाँ होने लगीं, सवारियां सजी जाने लगीं, धूप, दीप, हल्दी, दही, रोरी, दूर्वादिक शुभ शकुन निमित्त रची गईं, कौमार युवा वृद्ध पुरुष सुंदर सुंदर

शुद्ध वस्त्रों करके सुशोभित और आभूषणों करके आभू-
षित भालतिलक अपने संप्रदायानुसार लगाये हुये
हस्ति, अश्व, रथादिक पर सवार होकर नगर से बाहर
निकले, और चतुरङ्गिणी सेना के साथ होलिये, जिस
समय प्रजा की दृष्टि राजकुमार और राजकुमारी के
चन्द्र मुखपर पड़ी उनका मन मधुकर बन वहीं पहुँच
कर मकरंद रस पान कर मस्त होगया, और जीवात्मा
इन्द्रियातीत होने के कारण निर्विकल्प समाधि में प्रवेश
कर गया, थोड़ीं देर के लिये सन्नाटा छागया, सबका
अभाव होगया, जब मन मतवाला उठा, इन्द्रियां जागीं,
फिर सब मिलकर आनन्द रस ऐसे चन्द्रमा से लेकर
अपने स्वामी हृदयस्थ आत्मा को देने लगे, और वह
भी उस समाधि से उठकर उस अमीरस को पीकर
जो जिस अवस्था में है उसी में वह उन्मत्त है, न देह
की स्मृति है, न गेह की फ़िक्र है, फिर मन उठा,
राजा रानी के मुखारविन्दपर पड़ा, देखतेही करुणारस
उमंग होकर नेत्र द्वारा बहने लगा, अब प्रेमका प्रवाह
राजकुमार और राजकुमारी के तरफ़ और करुणा का
प्रवाह राजा रानी के तरफ़ गङ्गा यमुना की धारावत्
साथ साथ बहने लगा, और उन प्रिय लक्ष्यरूपी समुद्र
में पहुँचकर और वहां से टकराकर फिर उन्हीं स्रोतों

में दूने वेगसे गिरकर वहां के अधिष्ठातृदेव जीवात्मा को आनन्द देने लगे. अभिमुख मार्गों से प्रेम और करुणा के समुद्र ऊपर को उछल रहे हैं उस अद्भुत दृश्य को देखकर देव, दानव, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, जीव, जन्तु सब अवाक्य जहां के तहां स्थित हैं, जब दोनों तरफ़ के प्रेम के समुद्र कलोल करते करते शांत होगये, तब इन्द्रियां अपना अपना कार्य करने लगीं, और यथोचित शिष्टाचार होने के पीछे नगर के तरफ़ राजा रानी पधारे और राजमहल में पहुँचकर राज-सिंहासन पर बैठकर राजा अपने सन्मुख अवस्थित श्रोतृवर्ग से निम्नप्रकार कहने लगा—

राजा—हे प्रियवर ! आज जो हर्ष मुझको आपलोगों के देखने से और आपलोगों को मेरे देखने से होरहा है उसका अनुभवी हम दोनों का हृदयस्थात्मा है, इस परस्पर के आह्लाद का कारण आपका प्रिय राज-कुमार है—

हे आर्यवंशियो ! मैं आपको अपने अंतःकरणसे आशीर्वाद देता हूं कि आप सब पुत्रवान् हों, पुत्र घर का दीपक है, नेत्रों का तारा है, नरक का बाधक है, स्वर्ग का साधक है, अंधकार का नाशक है, धनों में उत्तम धन है, मणियों में उत्तम मणि है, लालों में उत्तम लाल है,

यह लाल अमूल्य है, जैसे सर्प विना मणि के, मीन विना नीर के रह नहीं सक्ता है, वैसेही कोई वंश विना पुत्रके स्थित नहीं रहसक्ता है, ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि आपको कभी पुत्रवियोग या पुत्रशोक न हो, सदा पुत्र-पुत्री से आपका घर भरा पुरा रहे, पुत्रवियोग का दुःख मैं उठा चुका हूं, नौवर्ष तक जो मुझको शोक रहा है, उसको मैंही जानता हूं, राजा दशरथको पुत्र-वियोग में प्राण को त्याग करना पड़ा, श्रवण के मारे जाने पर उनके माता पिताने अपने शरीर को अपने पुत्र के मृतकशरीर के साथ दग्ध करादिया, पुत्रके नाश होने का हाल सुनकर अतिज्ञानी वशिष्ठ ब्रह्मर्षि महाराज ने अपने आत्मा का हनन करना चाहा, द्रोणाचार्य यह खबर पाकर कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया रथ पर से गिरकर मरगये, पुत्रशोक के सहने में कौन समर्थ भया है, परमात्मा इस दुःख से शत्रु-मित्र सबको बचावे, यदि मैं पुत्रहीन होता तो आज कौन मुझको ब्रह्मा के कारागार से निकालता, कौन इस मेरी मातृ-भूमिका दर्शन कराता, मैं बंदी में पड़ा पड़ा सड़जाता, और मरने पर मेरे मृतकशरीरको गृध्र, शृगाल खाजाते, और मेरी अगति कर देते, हे मेरी प्रजाओ ! तुम सब अब अपने गृहको जाओ, अपने राजकुमार के बाहुबल

पर भरोसा रक्खो, वह सदा तुम्हारे जान माल की रक्षा करेगा, और तुम सबको तापत्रय से बचाता रहेगा, यह सुनकर सबके सब संतुष्ट होकर अपने अपने घर गये, और राजसभा का विसर्जन हुआ, जब एक मास व्यतीत होगया, सब प्रकार का प्रबन्ध बँध गया। तब राजकुमार और राजकुमारी और भानुमन्त्री ने राजा रानी के चरणकमल में दंड प्रणाम करके पर्यटन करने की आज्ञा मांगी वे ब्रह्मर्षि से सब हाल पहिले सुनचुके थे इसलिये राजकुमार के बाहर जाने को अंगीकार किया, पर मोह बड़ा प्रबल होताहै, उसने राजा के हृदय को तपाया, और उनके मुखकमल से यह वाक्य निकला.

राजा—हे पुत्र! मैं तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कभी न चलूंगा, पर आत्मिक प्रेम हृदय को प्रेरणा करता है कि तुम राजोपाधिको लेकर विचरो, और अपने माता पिता के चित्त को प्रसन्न रक्खो, और शीघ्र आनकर उनके तप्त हृदय को शीतल करो.

राजकुमार—हे प्रभो! सबका आत्मा एक है, जो आत्मा मेरे में है वही और प्राणियों में है, जब सब ऐसाही समझ जायँगे तब फिर मुझे कोई दुःख नहीं देगा, क्या कोई अपने आत्मा को दुःख देता है,

हे पिता ! आप मेरे इस शरीर के जनक हैं, पर इसका पालन पोषण करनेवाला यह मेरा दूसरा पिता भानू है, यह मुझको निरवलम्ब अवस्था में अपनी पीठ पर चढ़ाये हुये........घोर वनमें फिरता रहा है, और मेरे आराम के लिये अपने आराम को तृणवत् त्याग दिया है, जैसे सर्प अपने मणि की रक्षा और लोभी अपने धनकी रक्षा करता है वैसेही यह मेरी रक्षा करता रहा है, जब यह मेरा विश्वासपात्र प्रेमी पिता मेरे साथ रहेगा तो मुझको फिर किसका डर है, यह श्रद्धारूपी वृत्ति के आकार में मेरे अन्तःकरण में........सदा स्थित रहता है, यह मेरी दाहिनी भुजा है, मेरी बाईं भुजा मेरी अर्धाङ्गिनी राजकुमारी है, जिसने अपने प्राणको हथेली पर रखकर सिंह को मार कर मेरे प्राणकी रक्षा की है, और जिसकी सहायता करके मेरी जीत शत्रुके ऊपर हुई है, जैसे सावित्री ने अपने पति शालिवाहन को यमराज से अपने पातिव्रत्य के बल करके छुड़ा लिया था, वैसेही इस देवी ने मुझको मृत्यु के ग्रास से बचालिया है, यह मेरी धर्मवृत्ति मेरे बायें अंग में सदा स्थित रहती है, हे प्रभो ! जिसके दाहिने अंग में विश्वासवृत्ति और बायें अंग में धर्मवृत्ति हो उसको फिर किसका डरहै, हे पाठकजनो !

सच्ची प्रशंसा प्रशंसित धर्मारूढ़ पुरुष को वह आनन्द देता है जो रंक को धन पाने से और राजा को जीत के होने से होता है; वल्कि उससे भी अधिक होता है; कारण यह है कि पहिला आनन्द अविनाशी है, और दूसरा क्षणिक स्थायी है, राजाका जो विश्वासपात्र सेवक धर्मारूढ़ होताहै वह अपना कार्य शुद्ध अन्तःकरण के साथ परमात्मा को साक्षी जानता हुआ करता है, उसका संचित कर्म यश से भराहुआ हरदम उसके चित्तको प्रसन्न रखता है, और अपने शुभकर्मजन्य स्वादिष्ठ फल पाने की आशा उसके हृदयकमल को सदा ताज़ा वनाये रखती है, अमृतरूपी वाणी की धारा ने राजकुमार के मुखचन्द्रसे निकलकर भानु के हृदय-कमल को सिंचन करके खिला दिया, और उसका प्रतिविम्ब उसके मुख पर पड़कर आदित्यवत् प्रकाश करने लगा, पर राजा का जो सेवक कपट स्वभाववाला है, या येन केन उपाय करके राजकोष कोही राजा की प्रसन्नतानिमित्त या अपने उदरनिमित्त भरा करता है और ऐसा कर करके प्रजाको हानि पहुँचाता है, वह यहां अभ्यन्तर से दुःखी और वहां (शरीर त्यागने पर) नरकी वनता है, पत्नी पति के मुख से प्रशंसा पाकर फूले नहीं समाती है, कारण यह है कि पति के तुल्य

न कोई वस्तु पृथ्वी पर है, न स्वर्ग में है, इनका सम्बन्ध अकथनीय है...... ....यदि स्त्री चकोर है तो पति चन्द्रमा है, यदि पति चकोर है तो स्त्री चन्द्रमा है, एक दूसरे के मुखको चन्द्र चकोरवत् देखा करते हैं, जिस समय राजकुमारी ने अपनी प्रशंसा अपने प्राण-नाथ राजकुमार के मुखचन्द्र से सुनी वह अपने को भूल गई, उसकी शुद्धि बुद्धि जाती रही, केवल उसके नेत्रकी टकटकी राजकुमार के मुखारविन्द की तरफ़ लगी है, वाह, स्त्री पुरुषका प्रेम ऐसाही होना चाहिये, तीनों के प्रेमका हाल देख राजा रानी ने हर्षित होते हुये और आशीर्वाद देते हुये उनके मस्तक को सूंघा, और भानू के तरफ़ मुँह करके राजा ने कहा, हे भानू ! मैं तेरे उपकार के ऋण से कभी अनृण नहीं होसकता हूं, यदि तू मेरा भ्राता है जैसा कि राजकुमार ने कहा है तो यह तेरा भी पुत्र है, यदि तू मेरा ज्येष्ठ पुत्र है जैसा कि आज तक मैं समझता था तो भी यह तेरा पुत्र है, क्योंकि लघुभ्राता पुत्रकी जगह समझा जाता है, अब मैं दूसरीबार उसको तेरे सुपुर्द करता हूं, यह कह कर राजा चुप होगया.

इसके पीछे तीनों राजा रानी से बिदा होकर पश्चिम दिशा को पैदल चल पड़े, लोग राजकुमार राजकुमारी

को देखकर चकित होते थे, और यह कहते थे कि क्या आज सूर्य भगवान् ऊपर से नीचे आनकर पूर्व से पश्चिम को चले जारहे हैं, क्या आज चन्द्रमा सूर्य के साथ काल विरुद्ध सहचारी बनगया है, वायु देवता उन के शरीरों को स्पर्श कर शुद्ध होकर आस पास के प्राणियोंको शुद्ध किये देताहै, जिनको दर्शन इस त्रिमूर्ति का होता है वे तो उसी दम स्वर्गीयसुख को अनुभव करने लगते हैं, पर जिनको दर्शन दूरी के कारण नहीं मिलता है उनके हृदय में पवन के लगतेही एक प्रकार का रोमाञ्चित आनन्द मालूम होने लगता है; पर उसका कारण उनको नहीं मालूम होताहै हे मित्र! ईश्वरभक्ति से उत्पन्न हुये प्रेमका ऐसाही असर होता है, वे तीनों चलते चलाते पन्द्रहवें दिन उषःकाल में कैलास (बनारस) में जा पहुँचे, गंगाघाट पर उनको देख कर स्त्री पुरुष जो प्रातस्समय के कमल कलीवत् स्थित थे खिल उठे, हृदय उनका गद्गद होगया, यकायक उन सबके मुखसे राधाकृष्ण राधाकृष्ण का शब्द निकल पड़ा, मोहनरसिया आगये बगिया फूल उठी, सब कली कली, एक कली हरनाम (कृष्ण कृष्ण) कहत है; एक पुकारत अली अली (राधा राधा) प्रश्न उठता है कि शिवपुरी में शिवभक्तों ने राजकुमार और

राजकुमारी को देख कर शिवपार्वती शिवपार्वती क्यों नहीं कहा, समाधान यही होता है कि शिवको कृष्ण और पार्वती को राधा प्रिय हैं, और और उनको शिवका अभ्यागत पाकर शिव करके प्रेरित हुये उनके मुख से उनको देखतेही राधाकृष्ण राधाकृष्ण का शब्द निकल पड़ा, हे पाठकजनो ! जैसे सरोवर में कहीं श्वेत यानी रजत रंगके कमल और कहीं स्वर्ण रंगके कमल खिले होते हैं वैसेही गंगा के किनारे किनारे पुरुष स्वर्णवर्ण के और उनके वीच वीच में स्त्रियां रजत वर्ण के कमल-वत् प्रसन्न चित्त खड़े हैं, अपने अपने देवता को देख कर आनन्द के मारे फूले नहीं समाते हैं, मनरूपी वायु के वेगसे प्रेरित हुये झुक झुककर शुद्ध अंतःकरण से दंड प्रणाम करते हैं, राग, द्वेष, मत्सर, ईर्षादि दोष सबके हृदयसे दूर होगया है, हर एक अपने में विचार करता है कि क्या कारण है कि आज शिवका उपासक विष्णु के उपासक से या विष्णु का शिवके उपासक से, देवी का उपासक गणेशके उपासक से, या गणेश का उपा-सक देवी के उपासक से या जैनमतावलंवी वैष्णव-मतवालों से, अद्वैतवादी द्वैतवादी से, द्वैतवादी अद्वैत-वादी से, हिंसक जीव अहिंसक होकर एक दूसरे के साथ भ्रातृभाव से मिलते हैं, क्यों लोगों की प्रकृति में ऐसी

आश्चर्य मय विकृति आगई है, क्यों गज गजेन्द्र के साथ, मार्जार मूषक के साथ, सिंह गौके साथ, बकरी भेड़ियेके साथ खेल रहे हैं, मालूम होता है कि ये दोनों राजकुमार और राजकुमारी सच्चे अनुरागके अवतार हैं, और हमारे तारने के लिये आये हैं; आज सबके अंतःकरण में प्रकाश होरहा है, अंधकार भागा जा रहा है, धर्मराज का डंका फिर रहाहै; हर एक के दिल से आह्लाद ऊपर को उठा आरहा है; चेहरा दमक रहाहै; नेत्र प्रेम जल को बरसा रहा है, सूखे को हरा कर रहा है, जब घाट के स्त्री पुरुष नगर के अभ्यंतर पहुँचे; उन की सूरत देख कर उनके द्रष्टा उन्हीं तुल्य होते जाते हैं, दो चार दिन के अन्दर ही युग बदल गया, कलियुग गया, सत्ययुग आया, सैकड़ों कोस तक यही हाल होगया; चिन्ता भागी, शान्ति आगई, राजकुमार अपने प्रेमपात्र राजकुमारी और विश्वासपात्र भानू से कहता है कि काशीपुरी कैलासपुरी होरही है, शिव महाराज समाधिसे जग उठे हैं, पार्वती गंगारूप में होकर यहां की क्रूरता को बहाये लिये जाती हैं, अब यहां पर अधिक वास करनेकी आवश्यता नहीं है, कार्यकी सिद्धि हुई; लोगों की चिन्तागई, कुछ दिन पीछे श्रीअयोध्याजी पहुँचे, सरयू के किंनारे खड़े हुये, और उनको रामचन्द्रका वाक्य याद आया—

यद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना।वेदपुराण विदित जगजाना॥
अवधसरिस प्रियमोहिंन सोऊ।यहप्रसंगजानैकोउकोऊ॥
जन्मभूमि ममपुरीसोहावनि।उत्तरदिशि सरयूवहपावनि
जेमज्जेहिंते बिनाहिं प्रयासा।ममसमीपनरपावहिंवासा॥

पवनसुत हनूमान्‌जी को मालूम होगया कि यह दोनों कौन हैं, अपने चारों गणों यानी चारों दिशाभिमानी वायु देवताओं से कहा कि तुम सब इन पूज्य अभ्यागतों को स्पर्श करके स्वयमेव शुद्ध होते हुये नगरवासियों के शरीरों को स्पर्श करो, उन्होंने वैसाही किया, नगर के चारों तरफ़ सुगन्धी छागई, सबके हृदय में शुद्धि आगई, सत्यवृत्ति फैल गई, क्रूरता दूर होगई, वैरभाव जाता रहा, मित्रभाव आगया, आज अयोध्या में सब के अभ्यन्तर वैसेही हर्ष की वृत्ति उठ रही है जैसे रामचन्द्र को (लङ्का से वापिस आने पर) देखकर अवधवासियों के हृदय की वृत्ति आनन्द के मारे ऊपर को उछल रही थी, सब के सब धर्मारूढ़ हो कर सत्य को ग्रहण किये हुये, और असत्य को त्यागते हुये वर्तने लगे, क्यों उनकी वृत्ति ऐसी होगई वे नहीं जानते हैं, अयोध्या में एक पक्ष रहकर, और प्रति दिन सरयू में मज्जन कर अपने में अलौकिक आनन्द को पाकर वे तीनों बड़े हर्ष को प्राप्त भये, और उनके

स्पर्श से सरयू जल सुधा तुल्य होकर करोड़ों स्त्री पुरुषों के दिलोंको पवित्र कर उनकी वृत्तिको धर्म की ओर चला दिया जब देखा कि उनका आगमन फल देरहा है आगे बढ़े, और तीन दिन पीछे प्रयागराज में त्रिवेणी के निकट खड़े होगये, एक वेणी नागनी के आकार में चन्द्रमुखी के अमृत रसको पान करती हुई अनेक पुरुषों के पुरुषार्थ को हिला देती है, जहां तीन वेणी हिल मिल कर राग द्वेष को त्यागे हुये एक माता पिता (मैना और हिमाचल) से उत्पन्न हुई एक पति शिव पूजनार्थ काशीपुरी को जाती हों वहां का कहनाही क्या है; ये तीनों शक्ति जो एक में मिलकर पार्वती नाम से विख्यात हैं, अपने अपने उपासकों को उनकी वृत्ति के अनुसार यानी गंगाजी की उपासना करनेवाला सतोगुणवृत्ति करके स्वर्ग को प्राप्त होता है, सरस्वती की उपासना करनेवाला पितृलोक को रजोगुण वृत्ति करके प्राप्त होताहै, और यमुना देवी का उपासक शुद्ध तमोगुणवृत्तिद्वारा शिवलोक को प्राप्त होता है, त्रिवेणी की लीला अलख है, इसके रेणु रेणु में स्वर्गलोक, पितृलोक, और शिवलोक नाच रहे हैं, इसके घाटपर स्त्री पुरुष के मुख, श्वेत, श्याम, रक्ताकार कमल की तरह, आनन्द के मारे विकस रहे हैं, उनकी सुन्दरता एक

दूसरे के साथ ऐसी प्रिय लगती है, जैसे किसी सरोवर विषे इसी तीन रंगके अरविन्द प्रिय लगते हैं, यहां के लोगों की भी वृत्ति राजकुमार और राजकुमारी को देखतेही वदल गई, जिसमें क्रूरता, हिंसकता, द्वेषता थी, उससें अव नम्रता, दयालुता, शान्तता आगई है, पृथ्वी, जल, वायु, राजकुमार और राजकुमारी के स्पर्श से एक अनिर्वचनीय अद्वितीय गुप्तभाव सबके हृदय में दिखला रहाहै, लोग ऐसा अनुभव तो करते हैं पर क्यों ऐसा होताहै कोई कह नहीं सक्ता है, एक पाख प्रयाग में विश्राम करके वृन्दावन में तीनों मूर्त्तियां पहुँच गईं, मथुरा वृन्दावन के वीचमें पहुँचतेही वहां की पुण्यभूमि और पवित्र वायु ने राजकुमार के ऊपर मोहिनी शक्ति डाल दी, वह वैठगया, और राजकुमारी के तरफ़ रसिक नेत्र से देखकर कहा, हे प्यारी ! मेरी वंशी को दो, जिसको मैं कभी कभी अरण्य विषे वजाया करता था, राजकुमारी ने वैसाही किया, वंशी को विम्बाधर पर धरतेही उससें से ऐसी सुहावनी सुरीली तान निकली कि उसको सुनतेही सर्व जीव मोहित होगये, और एक दूसरे से कहने लगे कि क्या यह ब्रह्म-नाद है, क्या यहां समीप में कोई गन्धर्व इन्द्रलोक से आगया है, जो जहां पर है वह वहां से ही सुधि बुधि को

त्यागे हुये तन मन को भूले हुये वंशी की ध्वनि पर ध्यान दिये हुये आगे को भागे चले आरहे हैं, सहस्रों स्त्री पुरुष लड़के लड़की आनकर राजकुमार की अनुपमेय सूरत को देखकर श्रीकृष्ण की मूर्तिके तुल्य पाकर जिस को वे वहां के चित्रकारों के चित्रों में देखा करते थे चित्र सरीखे मूक होगये, न तान टूटती है, न उनका मन हटता है, और न उनमें से किसी को यह ज्ञान है कि वंशीवादक के सिवाय और कोई वस्तु है, न उनको पृथ्वी की, न वायुकी, न सूर्य की, और न आकाश की ख़बर है, उनका नेत्र तो वंशी बजानेवाले के रूप पर, और श्रोत्र वंशी की ध्वनि पर लगा है, हे वेदान्तियो ! जब तक तुम्हारे चित्तकी वृत्ति इसप्रकार आत्माकार लगातार नहीं बनी रहेगी तबतक मुक्ति की आशा से निराश रहो, हे प्रियपाठको ! देखो भक्तिमार्ग कैसा सरल और प्रिय और आनन्दजनक है, आवो सन्मुख श्रीकृष्ण की मूर्त्ति को देखो, तापत्रय को मिटाओ, जो चुपचाप चित्रवत् खड़े हैं उनमें से बहुतेरे जिनके प्रारब्ध की अवधि समाप्त होने पर थी, सदेह स्वर्ग को चले गये, और जो शेष रह गये वे इन्द्रियों—करके मजा लूटने लगे.

नौ वर्ष तक भारत वर्ष के तीर्थों में विचरते रहे,

वहां की और उनके आसपास की भूमि उनके समुप-
स्थिति करके विमल, विशुद्ध और सुखदायक वन गई,
उनके तीर्थयात्रा का अन्तिमभाग विचित्र चित्रकूट
में कटा. वर्षाऋतु के मध्यमें उन्होंने देश के अभ्यन्तरी
भाग के देखने का विचार किया, सबके सब पर्वत के
ऊपर से उतरे, गांवों के तरफ़ चले, राह में प्रथम वृक्षों
के दर्शन हुये, वायु के वेग करके झूमते हुये ऐसे मस्त
मालूम होते थे कि मानो वे मेघ नक्षत्र के मधुर अमृत-
रूप जलको पीकर मतवाले बनगये हैं, और आनन्द में
झुक झुककर संगीत के संग्रह करने को उद्यत होरहे
हैं, वृक्षों के सामने एक दिशा में धान धानी रंग में
रँगीला बना हुआ यौवन की उमंग में कोसों तक
लहर मार रहा है, जो सूचित करता था कि आज
रत्नाकर समुद्र हर्ष के कारण उथल पुथल कर रहा है,
दूसरी दिशाकी ओर दृष्टि के सामने कोसों तक हरे रंग
के दुशालों को ऊपर से नीचे तक ओढ़े हुये मक्का, ज्वार,
बाजरा खड़े हैं, और मुदित होते हुये अपने द्रष्टा से
कहरहे हैं कि हे मेरे प्यारे आगन्तुको ! आपकी सेवा
सत्कार के लिये मेरे बच्चे छोटे बड़े सब तैयार हैं,
कहीं कहीं अरहर (तूवर) के खेत वनकी शोभा को
दिखा रहे हैं अनेक प्रकार के फूल कहीं लाल, कहीं

पीले, कहीं नीले, कहीं बैंजनी, कहीं केलाई, कहीं गुलाबी, कहीं अलसई गलियों के किनारे किनारे झाड़ियों और नागफनियों के ऊपर या छोटे छोटे पेड़ों पर खिले हुये पथिकों के नेत्रों को अपने अमररस से तृप्त किये देते हैं, खेतों के अन्तर और बाहर जो स्त्री पुरुष खड़े हैं उनकी सूरत पर मदन की मूरत विराजमान होरही है, उनका तन पुलकित और मन मुदित होरहा है, किसी किसी धान के खेत में पिकबैनी स्त्रियां निराती हुईं मेघ जल के झकोरों से आनन्दित होती हुईं, भैरवी रागको ऐसी अलापती हैं कि लोगोंके कान खड़े होजाते हैं; और इधर उधर देखने लगते हैं कि क्या कहीं इन्द्रलोकी हरी अप्सरायें (सब्ज़परी) तो इन खेतों के आकर्षण शक्ति करके आकर्षित होती हुईं नीचे आनकर भँवर सदृश गूंज तो नहीं रही हैं, कभी कभी पुरुषों के राग भी अनुराग से भरी हुईं मदनको जगाती हुईं कोकिल बैनियों के तान को तन देती हैं, तालों के अन्दर कुमुदिनी और कमलिनी खिली हुईं सूचित करती हैं कि मानो पाताललोक से स्त्री पुरुष के सहस्रों जोड़े मुसकराते हुये किसी श्रेष्ठ पुरुष के आगमन के लिये खड़े हैं जब ये तीनों मूर्त्तियां गांव के अन्तर प्रवेश करती भईं तो देखती हैं कि हरएकद्वार के

सामने सुन्दर सुरुच चौक पुरा हुआ है, और उसके वीचमें मनोहरणीय सुमन रक्खे हैं, जो उनको वन विषे ऋषि पत्नियों के करकमल करके रचित चौकों को याद दिला रहे हैं, उनके आसपास स्थित हुये स्त्री पुरुष की सुन्दरता का क्या कहना है, नेत्र उनके मीनकी तरह, कपोल कमल के ऐसा, कान शशा (खरगोश) के ऐसा, नाक सुग्गे की चंचुकी तरह, ओष्ठ विम्बकी तरह, भौंहें कमान की तरह, बरौनियां भालों की तरह, दांत अनार दानों की तरह, कर कमल की तरह, अंगुलियां केलों की छोटी छोटी छिमियों की तरह, भुजायें नागशुंड की तरह, वक्षस्थल और कटि सिंहकी तरह, और उरु कदली-स्थम्भे के ऐसा प्रिय लगते हैं, हर एक के चेहरे पर मदन सदन किये हुये स्थित है, कारण इसका यह है कि सबका अन्तःकरण सुखी है, उसमें सतोगुणवृत्ति उठा करती है, रजो तमोवृत्ति दवी रहती है, और सब कोई धर्म परायण होरहे हैं, उनके वालक और वालिकायें उनसे भी अधिक सुन्दर और प्रिय लगते हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों के लड़कों का शरीर कुन्द इन्दु की तरह है, और शूद्रों के लड़कों के शरीर श्यामता लिये हुये हैं, पर उनमें अद्वितीय लोच होरहा है, सब स्त्री पुरुष लड़के वाले प्रातःकाल स्नान पूजादिक कर्म करके

और ज्येष्ठ श्रेष्ठको यथायोग्य दण्डप्रणाम करके स्वंस्व-कार्य में लगजाते हैं, हर एक गृह विषे एक गृहपति है, उसकी प्रतिष्ठा राजा के तुल्य होती है, जो वह कहता है वही सब कुटुम्बी करते हैं, किसकी मजाल है जो उसकी आज्ञा के विरुद्ध चले, उसकी पत्नी रानी के तुल्य समझी जाती है, उन दोनों की दृष्टि में सब कुटुम्बी एकसे हैं, अपने पुत्रों पुत्रियों में और अपने भाइयों के लड़के लड़कियों में सम बुद्धि रखते हैं, नौकर चाकर भी अकुटिल विश्वासविशिष्ट स्वामिभक्त हैं, और उन के स्वामी उनको पुत्रवत् मानते हैं, सास पतोह में वही प्रेम है जो जननी और उसकी निज पुत्रियों में होता है, दोनों अपने धर्म के अनुसार चलती हैं, पुत्र-वती समझती है कि मैं पुत्रकी कमाई की अधिकारी नहीं हूं, उसकी अर्धांगी उस धनकी अधिकारी है, इसलिये जो कुछ पुत्र उपार्जन करके लाता है वह अपने माता पिता की आज्ञानुसार अपनी स्त्री को देता है, और वे दोनों अपने माता पिताको अपना पूज्य देव समझ कर उनकी सेवा देवता के तुल्य करते हैं, और उनके आशीर्वाद करके फलते फूलते हैं, भाई भाइयों में वही प्रेम है जो पांचो पाण्डवों में था; जिधर बड़ा भाई जाताहै उधर विना पूछे पाछे छोटा भाई भी चला

जाताहै, ब्राह्मणों के घर विद्यालय होरहे हैं, चारों वर्णों के लड़के लड़की पढ़ते हैं, लड़कों को पुरुष पढ़ाते हैं, और लड़कियों को स्त्रियां पढ़ाती हैं, उन में किसी प्रकार का राग द्वेष नहीं है, वे सब अपने अपने वर्णाश्रम धर्मको भलीप्रकार जानते हैं, राजकुमारादिकों को देखकर उनके पीछे पीछे घूमते हैं, यह समुझते हुये कि ये तीनों किसी देवताके अवतार हैं, और हमारे कल्याण निमित्त आये हैं, एक दिन ग्रामवासियों की तीव्र इच्छानुसार राजकुमार निम्नप्रकार कहनेलगे जो लोग जड़ शरीर की निन्दा और केवल चेतन की प्रशंसा किया करते हैं उनका कथन यथार्थ नहीं है, इस जड़शरीर का अंग अंग अपूर्व है, आकर्षणशक्ति करके भरा है, सब सूर्य को देवता मानते हैं, और पवित्र कहते हैं, चन्द्रमा को अमृत का जनक और दुःख का नाशक बताते हैं, और यह ऐसाही है भी, पर उन स्त्री पुरुष को देख करके जो यौवन को प्राप्त है और जिनके मुखारविन्द की कांति झलक रही है, शरीर की सुन्दरता टपक रही है, ओष्ठ बिम्बकी तरह प्रिय लगरहे हैं, कपोल कमलकी तरह दीखरहे हैं, नेत्र अमीरस से भरे हैं, ग्रीवा शंख के ऐसा, वक्षस्थल और कटि सिंहकी तरह, भुजा नाग की सूंड़की तरह, कर कमल और जंघा कदलीस्तम्भकी तरह

विराजते हैं, देव गन्धर्व यक्षादिकों में से कौन है जो अपने प्राण को उनके ऊपर नेवछावर करने को तैयार नहीं होगा, कौन सूर्य चन्द्र की तरफ़ पीठ करके इनके मुख की ओर टकटकी बांधे खड़ा नहीं रहैगा, क्या यह बात अपवित्र और अशुद्ध जड़ वस्तु में होसक्ती है, जिसका कारण आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी शुद्ध है उसका कार्य स्थूलशरीर अशुद्ध कैसे होसक्ता है, विशेष करके जब चैतन्यात्मा जो सब पवित्रों का पवित्र है, सब शुद्धियों का शुद्ध है, उसमें वास करता है, हे प्यारे मित्रो ! यदि आपलोग हर एक इन्द्रिय की शक्ति को, जिस करके आनन्द मिलता है विचार करेंगे तो मालूम होगा कि यह स्थूलशरीर कैसा सुख का सदन है, शब्दसे जो आनन्द पुरुष को होता है वह केवल श्रोत्रइन्द्रिय करकेही मिलता है, रूप से जो आनन्द मिलता है वह नेत्र करकेही मिलता है, रस वा स्वादसे जो आनन्द मिलता है वह जिह्वा करकेही मिलना है स्त्री के स्पर्श से या कठोर या कोमल वस्तु से या गर्मी या सर्दी से जो आनन्द मिलता है वह त्वचा करकेही मिलता है, सुगन्धसे जो आनन्द मिलता है वह घ्राणेन्द्रिय करकेही मिलता है, कहने में जो आनन्द मिलता है वह वाणी करकेही मिलता है, तृप्ति से जो आनन्द

मिलता है वह उदर करकेही मिलता है, देने लेने में जो आनन्द मिलता है वह हस्त करके ही मिलता है, इसी करके यज्ञ किया जाता है, इसी करके दान किया जाता है, देश देशान्तर में फिरने से या तीर्थों में जाने से या ऋषियों के दर्शनसे जो आनन्द मिलता है वह पाद करके ही मिलता है, विषयानन्द में अत्यन्त आनन्द स्त्रीके भोगने में है, इस क्षणिक सुख की अपेक्षा और सब सुख तुच्छ हैं सो केवल उपस्थ इन्द्रिय करके ही मिलता है, और सब इन्द्रियों में अति श्रेष्ठ गुदा है इसके बिगर जाने से सब इन्द्रियां बिगड़ जाती हैं, जिस शरीर में ऐसा आनन्द मिले वह त्यागने योग्य कैसे समुझा जावे, इसका पालन पोषण अवश्य कर्तव्य है, यदि इससे और कोई वस्तु अधिक आनन्द-दायक नहीं है तो इसीके साथ रहना चाहिये, हे मित्र! निस्सन्देह स्थूलशरीर आनन्दभवन है, पर क्या कोई इन्द्रिय बिना मन बुद्धि और अहंकार के आनन्द दे सकती है, क्या कोई इन्द्रिय अपने घर में बिना प्राण के रह सकी है, क्या कोई इन्द्रिय गोलक बिना उसके देवता के सहायता के कोई कार्य करसकी है, कभी नहीं, हे मेरे प्यारे मित्र! पांच कर्मेन्द्रियों के पांच देवता हैं, जो उन्हीं के अन्तर रहा करते हैं, और जिनके निकल

जाने से वे इन्द्रिय गोलक कोई कार्य नहीं करसक्ती हैं, उसी तरह पांच ज्ञानेन्द्रियों के भी पांच देवता हैं, उनके विना वे इन्द्रियां कोई कार्य कर नहीं सकती हैं, शरीर के पांच विभागों में पांच प्राण यानी प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान स्थित हैं, दश इन्द्रियों में से कोई भी अपनी जगह में नहीं रह सक्ती है; यदि उनका मुख्य देवता प्राण निकल जाय, पर प्राण के रहने पर भी इन्द्रियों के देवता आनन्द देने में और कार्य के करने में असमर्थ हैं यदि उनकी सहायता मन, बुद्धि, अहंकार न करें, जब मनवृत्ति विषय को संकल्प करती है, बुद्धिवृत्ति उसकी ज्ञाता होती है, और अहंकारवृत्ति उसको निश्चय करती है, तब पुरुष को उसका पूरा पूरा ज्ञान होता है, ऊपर कहेहुये प्रकार दश इन्द्रियां, पांच प्राण, और मन बुद्धि और अहंकार यानी इन अठारह तत्त्वों के समुदाय को लिंग अथवा सूक्ष्मशरीर कहते हैं, यह स्थूलशरीर की अपेक्षा अति श्रेष्ठ है, और स्थूलशरीर इसकी अपेक्षा अति निकृष्ट है, चूंकि आचार्यों की इच्छा रहती है कि मनुष्य लोकउन्नति करें, इस कारण स्थूलशरीर में घृणा दिखाकर वैराग्यवृत्ति को उठाते हैं ताकि वे स्थूलशरीर से अपनी वृत्ति को हटाकर सूक्ष्मशरीर में लगावें, क्योंकि सूक्ष्म-

शरीर स्थूलशरीर की अपेक्षा अति उत्तम, अमर और अजर है, स्थूलशरीर की स्थिति शतवर्षकी वेदों में कही गई है, पर सूक्ष्म शरीर की स्थिति कल्प कल्पान्तर तक बनी रहती है, और जबतक पुरुष को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है तबतक इसका नाश भी नहीं होता है, वास्तव में आनन्द सूक्ष्मशरीर करके स्थूलशरीर में प्रतीत होता है, स्थूलशरीर में आनन्द नहीं है, पर यह आनन्द के भोगने का स्थान है, जब सूक्ष्मशरीर इसमें से निकल जाता है तब यह अमङ्गल प्रतीत होने लगता है, और शीघ्रही नष्ट भ्रष्ट हो जाता है, इसीसे सब कोई समुझ सक्ते हैं कि जो मनुष्य आनन्द को अनुभव करताहै तो क्या वह आनन्द स्थूल-शरीर में है या सूक्ष्मशरीर में है यदि वह आनन्द सूक्ष्म-शरीर में है तो किस तरह है, इसके जानने का यत्न करना चाहिये, विचार करने पर मालूम होगा कि पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच प्राण के होनेपर भी पुरुष कोई कार्य नहीं करसक्ता है, और न जानसक्ता है जबतक उसका मन उनके साथ नहीं हो लेता है, और मनके साथ होने पर भी पुरुष को केवल वस्तु के कर्तृत्व और ज्ञातृत्व शक्ति मिल सक्ती है, आनन्द नहीं मिल सक्ता है, आनन्द तो मनकी वृत्ति की निवृत्ति में

ही मिलता है, और किसी प्रकार से नहीं, देखो जाग्रत् और स्वप्न अवस्था में मनकी वृत्ति इन्द्रियों के साथ रहा करती है इसलिये उन दोनों अवस्थावों में दुःख ही दुःख प्रतीत होता है, और यदि कभी किंचित् सुख भी मिलता है तो भी वह केवल वृत्ति की स्थिति ही से मिलता है, जब तक लड़का परदेश से आनकर सामने नहीं खड़ा होजाता है तब तक पिता को अनेक प्रकार का सन्देह फ़िक्र लगा रहता है, जब सामने आन कर खड़ा होगया तो वृत्ति का उत्थान भी बन्द होगया, और एक क्षण आनन्द पिता को हुआ और फिर वृत्ति उठते ही उस प्यारे लड़के को छोड़कर अपने काम में लग जाता है, सुषुप्ति अवस्था में दोनों शरीरों का पता नहीं लगता है, वहां केवल कारण शरीर यानी अज्ञान रह जाता है, उस कारण शरीर में गया हुआ पुरुष बड़े आनन्द को प्राप्त होताहै, कौन संसार में है जो सुषुप्ति की इच्छा नहीं करताहै, क्योंकि यह आनन्द से भरा पड़ाहै, इसकी अपेक्षा स्थूल और सूक्ष्मशरीर दोनों घृणा के योग्य हैं, क्योंकि उनमें दुःख विशेषहै, सुख किंचित्मात्र है, इसलिये जो प्रकृति का उपासक है वह अनेकप्रकार के आनन्द देनेवाले भोगों को अनादि काल तक भोगता है, पर अन्त में वह आनन्द नाश होजाता

है, अविनाशी आनन्द केवल अपने स्वरूप में है, वही ब्रह्मानन्द कहलाता है, यह अविनाशी आनन्द अनन्त है, प्रकृति आनन्द अनादि शान्त है, जो पुरुष ब्रह्मानन्द को प्राप्त हुआ है, उसको सब विषयानन्द प्रकृतिजन्य दुःखरूप हैं, इसलिये मनुष्य को चाहिये कि स्थूलशरीरसम्बन्धी आनन्द में सदा न पड़ा रहे, आगे को बढ़ कर सूक्ष्मशरीरसम्बन्धी आनन्द के पाने का यत्न करे, फिर उसमें भी न पड़ारहे, आगे बढ़कर प्रकृतिसम्बन्धी आनन्द के भोगने का यत्न करे फिर ज्ञान वैराग्य द्वारा उसको जब मालूम होजावे कि यह तुच्छ है, तो उस आनन्द को भी त्याग देवे, और उससे बढ़कर जो स्वरूपानन्द है उसके पाने का यत्न करे, वह न कभी घटता है, न बढ़ता है, सदा एकरस रहता है, उसको पाल करके पुरुष आवागमन से रहित होजाता है, हे मित्रगणो ! अब आप लोगों को मालूम हुआ होगा कि क्यों आचार्यों ने स्थूलशरीर को अपवित्र और अशुद्ध कहा है, आप लोग इसके नाश करने का कभी ख्याल न करें, इसीके द्वारा स्वर्गीय सुख भोग मिलता है, और इसी द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है, आप लोग अकाम होकर निष्काम कर्म करके अपनी और अपने देश की उन्नति करें, इस व्याख्यान से सब श्रोता लोग

बड़े प्रसन्न हुये, और राजकुमार भी अपने आश्रम को सिधारे, इसी प्रकार हर ऋतु में कई वर्ष तक भारत के अभ्यन्तरी भागों में विचरते रहे, उपदेश करते रहे, और लोगों के आचरण, उन्नति, विद्या, नेष्टा को देख कर बड़े प्रसन्न रहते, और परमात्मा को धन्यवाद देते कि उनके और उनके मित्रों के राज्य में प्रजा ऐसी सुखी है, चैत्रमास के शुक्लपक्ष को जव राजकुमार राजकुमारी और भानू हरिद्वार में थे और गंगा महरानी के निकट कमलासन पर आसीन थे मगधदेश के राजदूत ने आनकर विनयपूर्वक कहा कि हे भगवन्! आपके माता पिता रोगग्रासित होते हुये आपलोगों के देखने की अति उत्कंठा कररहे हैं, यह सुनते ही सवके सव शीघ्र तैयार होकर २ घंटे के अन्तर ही योगवल करके राजा रानी के सम्मुख खड़े होगये, माता पिता को ऐसा मालूम हुआ कि राधाकृष्ण सामने खड़े हैं, उनको देखते ही जन्म जन्मान्तर के सम्पूर्ण कर्म क्षीण होगये, और अपने को शान्तचित्त, अभय, अविनाशी पाकर हँसपड़े यह कहते हुये कि आगे ब्रह्मऋषि महाराजका कहा हुआ वाक्य सत्य हुआ, और वड़े प्रेम और प्रसन्नचित्त के साथ बैठकर निम्नप्रकार स्तुति करते हुये शरीर का त्याग किया, उस काल उनके

देह में से विद्युत्की आकार में प्रकाशता हुआ प्राण निकल कर कृष्ण के रूप में खड़े हुये राजकुमारविषे प्रवेश करगया.

जय जय अविनाशी सब घट वासी व्यापक परमानन्दा।
अभिगति गोगीता चरित पुनीता मायारहित मुकुन्दा॥
जेहिंलागि विरागी अतिअनुरागी विगतमोह मुनिवृन्दा।
निशिवासर ध्यावहिं हरिगुण गावहिं जयति सच्चिदानन्दा

फिर न कहीं राधा हैं, न कृष्ण हैं, न ऊधो हैं, वहां राजकुमार, राजकुमारी, और भानू खड़े हैं, राजा रानी उस गति को प्राप्त होगये जिस गति को गज कृष्ण भगवान् के दर्शन को पाकर प्राप्त होगया था, हे पाठकजनो ! यदि ब्रह्मानन्द की प्राप्ति चाहते हो तो वेदान्त पढ़कर और समुझ कर अनन्य भक्ति के मार्ग पर चलो, और जीवन का फल चाखो, राजा रानी के मृतकशरीर के दाह किये जाने पर न कहीं राजा है, न रानी है, न सम्पत्ति है, न विभूति है, जैसे अनेक नटुये नाटकशाल में नाच कूदकर चले जाते हैं वैसेही अनेक राजा रानी इस पृथ्वीरूपी नाट्यशाले में नाच कूदकर चले जाते हैं, यह पृथ्वी किसी की नहीं भई है, न होगी, इस पृथ्वी-माता में दयालुता, और निर्दयता दोनों अत्यतन्ता के साथ हैं, जब अपने बच्चों को पालन पोषण करती है तो सचमुच यह करुणा की सागर बन जाती है. पर

जब नाश करने को उद्यत होती है, तो कठोर पत्थर की तरह होजाती है, हे माता ! जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर पर अपने पुत्र पुत्रियों के अविनाशी नाम, कीर्ति, और यशको जिसको वे अपने पीछे छोड़ जाते हैं, उनके नाश करने को तू असमर्थ है, युग युगान्तर वीतगये पर हरिश्चन्द्र, जनक, दधीचि, दिलीप, रघु, राम, कृष्ण, युधिष्ठिरादिकों के नाम, यश, कीर्ति अभीतक वनी है, और बनी रहेगी.

सूतक राज्य भरमें दश दिन तक माना गया, इसके अन्त होनेपर राजा रानी का श्राद्धकर्म वड़े धूम धाम से किया गया, प्रजा का पिता राजा भी होता है, इस- लिये कुल प्रजा ने भी श्राद्धकर्म यथायोग्य किया, उनकी भक्ति, और श्रद्धा को देखकर राजा रानी वैकुंठ में अति मुदित होते थे, अपने प्रजा की सराहना सव देवताओं से करते थे, और उनके फूलने फलने के निमित्त आशीर्वाद देते थे, एक पथिकने एक गांववाले से पूछा कि क्या कारण है कि सव जगह ब्रह्मभोज दिया जा रहा है, दान पुण्य होरहा है, उसने उत्तर दिया कि हे प्यारे, पथिक ! मनुष्य के दो पिता होते हैं, एकतो उनमें से शरीर का जनक, और दूसरा शरीर का रक्षक और पोषक, एक स्वार्थी, दूसरा परार्थी, शरीर- जनक पिता अपने लाभार्थ पुत्रकी सेवा उसके वचपने में

करता है, और द्रव्य उपार्जनार्थ उसको विद्या पढ़ाता है, पर राजपिता उसके और उसके कुटुम्बियों के अर्थ उसकी और उसके घरकी रक्षा बचपन से बुढ़ापे तक करता है, इस कारण शरीरजनक पिता से राजपिता बहुत श्रेष्ठ है, हे पथिक! स्वर्गवासी राजा रानी हम सब को पुत्रसे भी अधिक चाहते थे, क्या हमारा धर्म नहीं है कि हम उनकी उपकृतज्ञता के ऋणसे उऋण होवें, और संसार को दिखावें कि प्रजा का क्या धर्म अपने राजा के साथ उनके जीने और मरने पर है, ऐसा उत्तर पाकर पथिक प्रजा की सराहना करता हुआ राजद्वार के निकट पहुँचा, देखा कि सर्वस्व दान होरहा है, सहस्रों हस्ति, अश्व, गो, ब्राह्मणों को दिये जा रहेहैं, और उन लोगों ने उस दान को लेकर जंगल में उनके मंगलार्थ उनको छोड़ आते हैं, सुवर्ण मणि आदिकों का दान इतना दिया गया कि ब्राह्मणों का जब घर भर गया तब राजद्वारपर उसको वे छोड़कर चले गये, और राजकुमार के आज्ञानुसार वह सब एक बड़े खड्डमें गड़वा दिया गया, यह ख्याल करके कि जब कभी किसी राजा को आवश्यकता यज्ञादिक की पड़ेगी तो वह इस गड़े हुये धनको अपने कार्य में लावेगा, एक पक्ष के बीत जानेपर राजकुमार के राज्याभिषेक उत्सव का आरम्भ होने लगा, और एकमासके अन्दरही सम्पूर्ण सामग्री एकत्र होगई,

देश देशांतरों के आचार्य, ब्राह्मण, ऋषि, मुनि, राजा, रानी मगध देश की राजधानी में पहुँच गये. और उस राज्यकी प्रजा राजधानी की तरफ़ ऐसी चली आती है जैसे पर्वत परसे अनेक नदियां अपने पिता समुद्र से मिलने के लिये चली जाती हैं, इन नदियों के तरंग को देखकर जो कभी ऊंची और कभी नीची मालूम होती थीं कौन पुरुष ऐसा है जिसका हृदय आनन्द के मारे उमंग न करता, और जैसे नदी जल पहाड़ से टकरा कर कोसों तक फैल जाता है उसी प्रकार सब प्राणीमात्र राजधानी के पास आनकर इधर उधर छितरे वितरे पड़े हैं, उनमें से जो तेजधारी प्रतापी हैं वे लहरियेदार तम्बुओं के अन्दर जो दूरसे समुद्रविषे जहाज के सदृश दिखलाई देते थे विराजमान थे, और जिनके प्रारब्ध-कर्म ऐसे बली न थे वे घने हरे छतनारे वृक्षों के नीचे जो ईश्वरकृत तम्बू थे वड़े हर्ष में छिटके पड़े थे, और परस्पर के आह्लाद का मज़ा लूट रहे थे, चैत्रमास के कृष्ण पक्ष नौमी के दिन प्रातःकाल हज़ारों वँधुवें मुक्त कर दिये गये, हज़ारों को पारितोषिक मिलगया, हज़ारों को जागीरें दीगईं, चारों तरफ़ दान पुण्य का धूम धाम मचा है, कोई किसी की नहीं सुनता है, सब कामना से उपरित होगये, नौकर चाकर छोटे वड़े सबके सब तृप्त होगये, मालूम होता है कि दुनिया पलट गई,

जहां पहिले कांटा था वहां अब फूल लगा है, जो पहिले सूखा था वह अब हरा भरा है, नगरभर में हर एक घरके द्वार पर वन्दनवार टँगे हैं, पुष्पलगे हैं, चौक पुरे हैं, हवनादिक होरहे हैं, वेदमंत्रों का उच्चारण किया जा रहा है, ईश्वरकीर्तन जगह जगह हो रहा है, सूम सखी वन गये हैं, रंक कुबेर दीखते हैं, कंगाल धनाढ्य होकर धन बांट रहे हैं, इधर उधर कंचनी नृत्य कररही हैं, जो जिस रंग में है वह उसीमें मस्त है, प्रकृति महारानी का ठाट टूट जम रहा है, जिसको देखकर पुरुष मग्न है, किसी बातकी कहीं कमी नहीं है, मालूम होता है कि ऋद्धि सिद्धि विना बुलाये आगई हैं, अपने स्वामी के आनन्द के लिये अपनी शक्ति को दिखा रही हैं, सायंकाल से ही चारों तरफ़ दीपमालिकायें प्रकाश कर रही हैं, कन्दीलें जल रही हैं, सबका ध्यान राज्याभिषेक के नियतकाल के तरफ़ लगा है, और उनका श्रवण इन्द्रिय शशाकर्णवत् उठा है, एकाएक तोपों की सलामियां होने लगीं, शंखध्वनि बताती है कि राजगद्दी उत्सव की पूर्णता होगई, और राजाने प्रजा के पालन की प्रतिज्ञा ईश्वर को साक्षी देकर की, रात भर हलचल मचा रहा, भोर होतेही सब प्रसन्नचित्त अपने अपने घरको गये, प्रकृतिपुरुष विनोदार्थ अनेक प्रकार का परिवर्तन किया करती हैं.

नवीन राज्यप्रबन्ध किया गया, पुराने अफसरान यथायोग्य स्थान पर तैनात किये गये, वे सब अपना अपना कार्य धर्मपूर्वक करने लगे, जब राजाने देखा कि प्रजा सुखी है, तब ब्रह्मऋषि और राजऋषि के दर्शन पाने का विचार किया, मुख्य प्रधान शांत विनयपूर्वक कहता है कि हे प्रभो ! राजसामग्री साथ में लेजाने के लिये क्या आज्ञा है, यह सुनकर राजा कहता है.

राजा–हे प्रधान ! तुम जानते हो कि आनन्द केवल राजविभव मेंही होता है, यदि ऐसी तुम्हारी सम्मति है तो यथार्थ नहीं है, राजसामग्री में आनन्द कहां, आनन्द तो केवल अकेले पैदल चलने में होता है, जो प्रेम प्रतिष्ठादि मुझको राजमहल में मिलता है वह बनावट से भरी है, इसलिये इन राजसी ठाट टूट को मिथ्या जानकर इनके तरफ़ में मुँह भी नहीं करता हूं, पर राजवंश में उत्पन्न होने के कारण मैं राजकार्य को केवल अपना धर्म समझकर करता हूं, मेरा चित्त तो उन्हीं के तरफ़ हरदम लगा रहता है जिनका चित्त मेरे में अहर्निश लगा रहता है, जिस वनविषे मैं बहुत काल तक रह चुका हूं, जिन भोले भाले लड़कों के संग खेल चुका हूं, जिन सुखदायी पेड़ों के नीचे आराम करचुका हूं, जिन शुद्ध निर्मल नीरों में नहा

चुका हूं, जिन पशु पक्षी के नाच कूद को देख चुका हूं, जिन ऋषिपत्नियों के गोद में दौड़कर चढ़ चुका हूं, जिस मन्द सुगन्ध वायु के स्पर्श का मजा उठा चुका हूं, और जिस मनोहारणीय अद्वितीय दृश्य को सायं और प्रातःकाल देखकर मैं कूदने लगता था, हे प्रधान! जब उन सबकी स्मृति मेरेमें हो आती है तब मैं अपने से बाहर हो जाता हूं, हे प्रधान! जैसे रामचन्द्र को अयोध्या के वासी प्रिय थे वैसेही मुझको उस वनके वासी प्रिय हैं, वह वन मुझको स्वर्ग, वैकुंठ और कैलास से भी अधिक प्रिय सुहावना लगता है, जो मेरे साथ वहां रहे हैं केवल वेही मेरे साथ जायँगे, एकमास तक मैं सहित रानी और भानू के वहां रहूंगा, तुम सब राजकार्य को सँभालते रहना, यह कहकर तीनों पैदल चल पड़े, यह गये वह गये, थोड़ी देर में नज़रों से गायब होगये, और १५ दिन पीछे उस वन में पहुँच गये, आज वनकी शोभा को कौन कह सक्ता है, यह सुनकर कि राजकुमार, राजकुमारी, राजा, रानी होकर आ रहे हैं, सब वनवासी दौड़पड़े, सबकी एकवृत्ति राजा रानी के दर्शन करने की लगी है, एक-वृत्ति का क्या कहना है, जिसकी एकवृत्ति होजाती है उसको अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में किंचिन्मात्र भी देरी नहीं लगती है, राजा रानी और भानू को देखते ही

सबके सब मग्न होगये, और अंतःकरण विशिष्ट आनन्द का प्रकाश उनके मुखपर छागया, फूलों की कली फूल उठीं, वृक्ष बौरागये, पक्षी नाचनेलगे, पशु कूदने लगे, प्रेम का ज़ोर है, सजावट बनावट का कहीं पता नहीं, काम, क्रोध, मोह, लोभ उठकर भागगये, सबको नमस्कार करते हुये ब्रह्मऋषि की कुटी के द्वारपर पहुँच गये, वहां के आनन्द को कौन कहसक्ता है, ब्रह्मऋषि भी इन तीनों मूर्तियों को देखकर थोड़ीदेर तक अवाच्य होगये, सच्चा प्रेम कर्ता को अकर्ता और वक्ता को अवक्ता करदेता है, यह उसका गुण है, थोड़ी देर के पीछे जब प्रेम का प्रवाह कुछ बन्द हुआ, ऋषिने सबसे कुशल मंगल पूछा, और यथोचित उत्तर पाकर बड़े प्रसन्न हुये, इतने में और सब ऋषि, उनकी पत्नी, और उनके लड़के आनकर राजा रानी को घेर लिया, जो राजा रानी के सम कालीन स्त्री पुरुष थे, उनके हृदय में पिछला प्रेम उठ खड़ा होगया, उनको देखते ही आंसुओं का धार बह निकला, जोवता था कि उनका कितना अनुराग राजकुमार और राजकुमारी में था, पुरुष राजकुमार से और स्त्री राजकुमारी से एक एक करके श्रेष्ठता और न्यूनता को त्यागे हुये मिले, यह स्नेहही है जिसमें विषमभावना लय रहती है, और समभावना प्रादुर्भूत हो आती है, इसमें जात पांतका

पता नहीं रहता है, आपसमें बचपने की तू तड़ागकी बातचीत होने लगी, उस वाक्यव्यवहार से जो आनन्द मिलता था वह त्रैलोक्य के राज्य पाने से भी किसी को नहीं मिलसक्ता है, राजऋषि को देखते ही राजा रानी उनके चरणकमल स्पर्श करने को ऐसे दौड़े जैसे गोवत्स अपनी माता को देखकर दौड़ता है, और उन्होंने उन दोनों बालकों को अपने हृदय से लगालिया, दाहिने भुजामें सूर्यकांत हैं, और बायें भुजा में चंपावती है, उनकी उस समय की छवि सूचित करती थी कि मानो आज हिमाचल पर्वतने राजऋषि के आकार को धारण करके अपने एक अंगमें चन्द्रमा को लिये और दूसरे अंग में सूर्य को लिये खड़ा है ऐसे दृश्य को देखकर सबका मन मुदित होगया, जब सायंकाल का समय आया राजाने ब्रह्मऋषि की कुटी में और रानी ने राजऋषि की कुटी में विश्राम किया, और जब एक मास के लगभग व्यतीत हुआ, और सब स्थावर जंगम प्राणियों को आनंद मिल चुका तब ब्रह्मऋषि ने राजा रानी को राजधानी वापस जाने के लिये आज्ञा दिया, जाते समय एक आश्चर्यमय दृश्य यह दिखाई दिया, कि असंख्यों जोड़े राजा रानी के और उनके साथही साथ असंख्यों जोड़े राधाकृष्ण के चारों तरफ़ घूम फिर रहे हैं, सारा जंगल मंगल होगया, इस कौतुक को देखते

हुये जो जहांपर है वह वहीं पर अवाच्य खड़ा है, आनंद से भरा है, पर किसी के समुझमें नहीं आताहै कि यह क्या है, ब्रह्मऋषि और राजऋषि जान गये कि उनकी इच्छानुसार ईश्वरने अपना दर्शन दिया है, और राजा कृष्ण के और रानी राधाके अवतार हैं, मनही मन में बारंबार नमस्कार किया, और प्रार्थना किया कि हे प्रभो! आप अपनी माया को बटोर लो इस वन के जीवमात्र आपके दर्शन से कृतकृत्य होगये, उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई फिर केवल एक जोड़ी राजा रानीकी रह गई, हे श्रोतावो! जैसे ऋषि आदिकों ने राजा रानी को राजधानी के लिये बिदा किया वैसेही मैं आपलोगों को अपने लड़कोंबालों के देखने के लिये बिदा करता हूं, आपलोग कुछ काल घर पर रहकर और सबका द्रष्टा ईश्वर को स्मरण करते हुये आनंद भोगिये, मैं इस अपने चतुर्थाश्रम में कुछकाल इस अरण्यविषे ऋषियों के चरणकमल में रहकर ईश्वराराधन करूंगा, आप लोग अवकाश पानेपर वसंतऋतु के आगमन के एक पक्ष पहिलेही मेरे तरफ़ पधारियेगा जो कुछ सेवा सत्कार वाक्यद्वारा कर सकूंगा अवश्य करूंगा.

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥